जीवन विवेचन

भाग 6(ख)

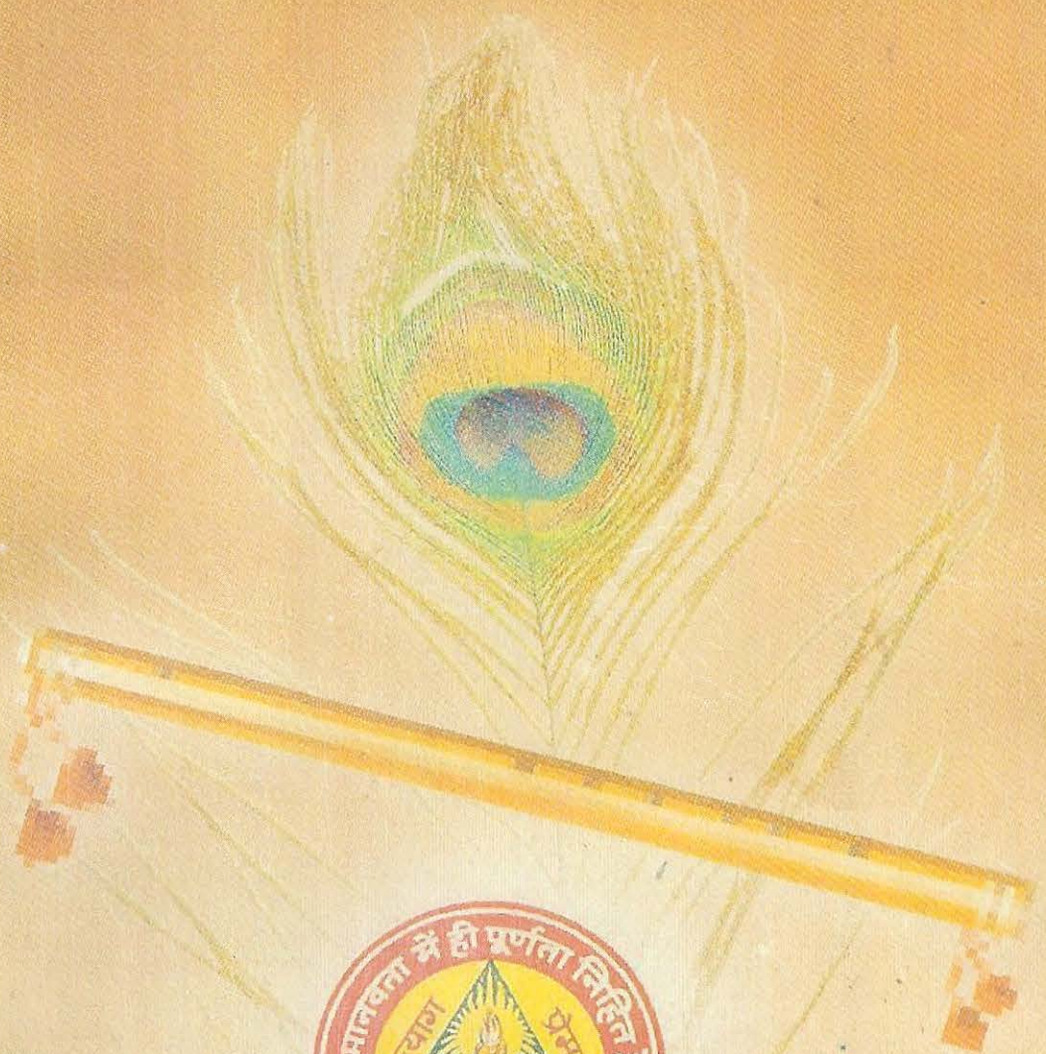

मानव सेवा संघ, प्रकाशन
वृन्दावन (मथुरा)

जीवन विवेचन

भाग 6(ख)

परम पूज्या दिव्य ज्योति
देवकी माताजी के प्रवचन

मानव सेवा संघ प्रकाशन
वृन्दावन (मथुरा)

• प्रकाशक :

मानव सेवा संघ
वृन्दावन (मथुरा)
पिन-281121

© सर्वाधिकारी प्रकाशक

• प्रथम संस्करण—2008

• 3000 प्रतियाँ

• मूल्य : 20.00 रुपये

• मुद्रक :
पावन प्रिन्टर्स,
मेरठ

प्रार्थना

('प्रार्थना' आस्तिक प्राणी का जीवन है।)

मेरे नाथ!
आप अपनी,
सुधामयी,
सर्व समर्थ,
पतितपावनी,
अहैतुकी कृपा से,
दुःखी प्राणियों के हृदय में,
त्याग का बल,
एवं
सुखी प्राणियों के हृदय में,
सेवा का बल
प्रदान करें;
जिससे वे
सुख-दुःख के
बन्धन से
मुक्त हो,
आपके
पवित्र प्रेम का
आस्वादन कर,
कृतकृत्य हो जायें।

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !

प्रार्थना

मेरे नाथ,

आप अपनी सुधामयी, सर्व समर्थ, पतित पावनी, अहैतुकी कृपा से मानव मात्र को विवेक का आदर तथा बल का सदुपयोग करने की सामर्थ्य प्रदान करें एवं हे करुणा सागर ! अपनी अपार करुणा से शीघ्र ही राग-द्वेष का नाश करें। सभी का जीवन सेवा-त्याग-प्रेम से परिपूर्ण हो जाए।

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !

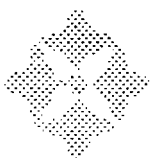

वस्तु खिंचती है धरती की ओर
मनुष्य खिंचता है अनन्त की ओर !

अनुक्रमणिका

क्रमांक		पृष्ठ संख्या
1.	प्रवचन 11	...7
2.	प्रवचन 12	...23
3.	प्रवचन 13	...39
4.	प्रवचन 14	...54
5.	प्रवचन 15	...68
6.	प्रवचन 16	...83
7.	प्रवचन 17	...98
8.	प्रवचन 18	...111
9.	प्रवचन 19	...130
10.	प्रवचन 20	...143

मेरा मुझमें कुछ नहीं,
जो कुछ है सो तोर !

श्री सद्गुरु देव के श्री चरणों में
सादर सविनय समर्पित

—विनीता देवकी

प्रवचन 11

जैसा कि साधारण रूप से कह दिया जाता है वह योग नहीं है। योग का विशेष अर्थ है कि इस समय हम लोग अपने को परमात्मा से दूर अनुभव कर रहे हैं। योग माने दोनों का जुट जाना। तो शरणागति की बड़ी भारी विशेषता है कि जिससे आज दूरी मालूम हो रही है उससे वह जुटा देगी। यह विशेषता है। कोई ज्ञान स्वरूप से जुट जाता है और कोई शरणागत भाई होते हैं वे प्रेम स्वरूप से जुट जाते हैं। योग माने जुट जाना और एक हो जाना। भगवत्-शरण भाई हैं क्या? आपका प्रश्न परसों से ही रखा हुआ है तो थोड़ी बातचीत कर ली जाए। करना होने में बदल जाए इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मुझे क्या करना चाहिए? करना होने में बदल जाता है किसका। जो अहं-शून्य हो जाता है उसका।

बहुत सहज बात है कि अपने को अहं-शून्य करना है, तो दोषों को जीवन में रखना नहीं है। दोष दिखाई दें तो उनको मिटाते जाओ और गुणों का अभिमान बनाना नहीं हैं। गुण दिखाई दे तो स्वामी जी महाराज ने एक बहुत छोटा-सा मंत्र सिखाया और कहा कि देखो भई मिठास कहीं भी है, तो खाँड की है ठीक है न। गुड़ बना लो, चीनी बना लो, मिश्री बना लो, मिठाई बना लो, शर्बत बना लो कितने विविध रूप में बदल डालो कहीं भी कोई वस्तु जीभ पर रखने से अगर मीठा स्वाद आता है तो जानने वाले को जानना चाहिए कि यह मिठास गन्ने में से आया है। चाहे कहीं भी हो और किसी रूप में हो। तो अहं-शून्य जिनको होना है, उनको अपने में किसी प्रकार का गुण दिखाई दे तो उसको समझना चाहिए कि अनन्त गुणवान परमात्मा का ही गुण है, यह मेरा नहीं है। गुणों का अगर अपने पर आरोप न करो तो गुण का अभिमान नहीं बनेगा। गुणों का सहारा लेकर समाज में ऊँचा होकर चलने की कोशिश न करो तो गुणों का

अभिमान नहीं बढ़ेगा। भक्ति के आधार पर निर्भय रहो लेकिन गुणों का अभिमान लेकर अपने को बलिष्ठ अनुभव न करो तो अभिमान नहीं बढ़ेगा। तो जाने हुए दोषों का त्याग करते जाओ और मिले हुए गुणों का सदुपयोग करते हुए भी अपने को गुणवान मानने की भूल न करो, तो अहं का नाश होगा। और जिनके अहं का नाश होता है, जिनकी सारी शक्तियाँ समष्टि शक्ति के साथ जुट जाती हैं उनका करना होने में बदल जाता है। जो शरीर से वे करते भी हैं तो उनको ऐसा दिखाई देता है कि जैसे गंगा बह रही है, जैसे वृक्ष के पत्ते डोल रहे हैं वैसे इस यन्त्र में से भी एक प्रकार की ध्वनि निकल रही है। तो ध्वनि के साथ वे जुटे हुए नहीं होते हैं तो बोलता हुआ शरीर भी उनको ऐसा नहीं लगता कि मुझमें श्रम हो रहा है।

चलता-फिरता काम करता हुआ शरीर भी उनको ऐसा नहीं लगता है कि ये सब जारी क्रियाएँ मुझमें हो रही हैं, ऐसा उनको नहीं लगता है। तो करना होने में किनका बदलता है? जो दोषों को जीवन में रखते नहीं हैं, गुणों का अभिमान नहीं करते हैं, कर्त्तापन अपना नहीं रखते हैं। जो असंग होकर रहते हैं या समर्पित होकर रहते हैं, उनका करना होने में बदल जाता है। तो करना होने में बदले यह तो आखिरी बात हो गई। प्रारम्भिक बात क्या है कि जितना कर सकते हैं उतना जरूर करना चाहिए। काम करने की क्षमता अपने में है और उसको बचा करके रखो तो मतलब सिद्ध नहीं होगा, करने का राग नहीं मिटेगा, और करने का राग नहीं मिटेगा तो मरणशील शरीर से छुट्टी पाने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। तो बढ़िया-बढ़िया बातों को हम लोग सीख लें और कहते रहने और सुनते रहने का मजा लेते रहें तो न कहना खत्म होगा, न सुनना खत्म होगा और मतलब सिद्ध नहीं होगा।

ये हमारे भाई जी आते हैं, प्यारेलाल डागा जी बैठे हैं वहाँ, कितने दिन हो गए उनको स्वामी जी महाराज की संगति में, सेठ जी की संगति और हमारे पास भी जब कभी पत्र लिखते हैं और आते हैं तो एक बात

मैं याद दिलाती हूँ कि बाबा सुनने का काम अब और कितने दिन बाकी है ? तो बेचारे क्या कहते, हँस कर रह जाते हैं। तो सुनने की ताकत खत्म हो गई और सुनने का काम बाकी रह गया तो सुनना सफल हो गया क्या ? जी ! नहीं हुआ। शक्ति चली गई और जरूरत रह गई, तो ये बाजी हार जाने के समान हो गया। इस बार का मजा तो गया ही। अब प्रकृति फिर उदारता करेगी पल-पल करते छिनते-छिनते यह शरीर खत्म होगा।

प्रकृति के विधान में मेरे लिए उसके न्याय में मेरे लिए फिर श्रवण-शक्ति देने की बात रह गई होगी तो फिर से शरीर मिलेगा, फिर सुनने की ताकत मिलेगी। और नहीं तो कोई जन्म से ही अन्धा बहरा पैदा हो तो वह भी एक-प्रकार से भुगतान ही है और क्या है। तो करना होने में बदल जाए, यह उनका होता है जो कि प्राप्त सामर्थ्य का बहुत ठीक-ठीक सदुपयोग कर डालते हैं। काम मैंने किया और स्थूल स्तर पर वह सफल दिखाई देता है कि नहीं यह विचार तो दूसरे लोग करेंगे, लेकिन कर्त्ता को तो अपने किए हुए का फल तत्काल मिल जाएगा। किस रूप में, अगर उसने ईमानदारी से काम किया है और अगर करने का राग खत्म हो गया तो उसका काम तो पूरा हो ही गया और समाज का काम तो कभी पूरा होना ही नहीं है। सृष्टि का काम तो कभी पूरा होता ही नहीं है। जब से सृष्टि बनी तब से चलने लगी और लगातार चल ही रही है और लगातार चलती ही रहेगी।

पिछली दफा स्वामी रामसुखदास जी आए थे हम लोगों के बीच। आमन्त्रित किया था हम लोगों ने। स्वामी जी महाराज के प्रेमियों में से हैं। जब वे वृन्दावन में होते हैं तो स्वत: भी कृपा करते हैं और समारोह था तो हमने समाचार भी भेजा था, महाराज आइए और हमारे सब साधक लोगों को कुछ कह जाइए। तो उस दिन जब वे भाषण दे रहे थे। श्रम परिश्रम की बात पहले मैंने की थीं उसके बाद उन्होंने शुरु किया था तो

उसमें यह कह रहे थे कि जब महाप्रलय हो जाता है सारी सृष्टि एकदम नाश के रूप में छिप जाती है तो बहुत दिनों के लिए छिप जाती है, तो मालूम होता है कि सब क्रियाएँ बन्द हो गई हैं, फिर भी सब क्रियाएँ बन्द नहीं रहती हैं। क्योंकि हम लोगों को स्थूल दृष्टि से दिखाई देता है कि सब गतिशीलता शांत हो गई, बन्द हो गई, सब नाश हो गया। लेकिन उस नाश में और उस निष्क्रियता में भी भीतर-भीतर एक क्रिया हो रही है जिसकी पूर्ति हो जाने पर फिर से नई सृष्टि आरम्भ हो जाती है।

समझ में आता है। science में ये incubation period कहलाता है। हम लोग psychology में इस रूप में इसकी व्याख्या करते थे। incubation period का आशय यह है कि सब preparation आपने कर ली है सब तैयारी आपने कर ली, सब चीज सजा-सजा के कर करके जिस चीज को जहाँ रखना चाहिए रख दिया। तो बाहर से आपको कुछ करना नहीं है कुछ छेड़ना-छाड़ना नहीं है, लेकिन चुपचाप ठीक जगह पर ठीक तरह से रखा हुआ है तो उस रखी हुई हालत में ऊपर से नहीं, भीतर से उसमें अपने आप से कुछ क्रियाएँ, हो रही हैं जोकि एक खास समय पर प्रकट हो जाएँगी। तो इस तरह से गति तो नाश हुई नहीं। तो सृष्टि में कभी क्रियाशीलता खत्म होती हो ऐसी बात नहीं है लेकिन कर्त्ता जो है वह अगर अपना काम बहुत ही निष्ठा के साथ, सावधानी के साथ पवित्र भाव से भावित होकर, प्यारे प्रभु की प्रसन्नता का लक्ष्य लेकर, राग-निवृत्ति का लक्ष्य लेकर कर डालता है तो उस कर्त्ता का काम पूरा हो जाता है। उसका राग खत्म हो गया तो काम पूरा हो गया। और बाकी सृष्टि का क्या होगा? तो मैं कहती हूँ कि पहले वीतराग होकर तो देखो पीछे चिन्ता करना, सृष्टि का मालिक तो परमात्मा है ही। अकेले काफी है, चिन्ता करने के लिए।

तो जिसने सृष्टि बनाई है वह सोच लेगा कि कैसे करेंगे कि कैसे करना है, कैसे सँभालना है सो चिन्ता हम क्यों लें। अपने को पहले हम

वीतराग बनाए तो सही। काम करने का जो अवसर मिला है उसको इतनी सावधानी से काम में लिया जाए कि करने की शक्ति रहते-रहते करने का राग खत्म हो जाए। तो जिनके करने का राग खत्म हो जाता है, उनका करना होने में बदल जाता है। जो सर्व समर्थ प्रभु के हो जाते हैं, अपना कर्त्तापन नहीं रखते हैं उनका करना भी होने में बदल जाता है। कैसे बदल जाता है? कि वे स्वयं तो अपने प्यारे के प्रेम में छके रहते हैं और भगवत् कृपा से, उन करुणामय, के मंगलमय विधान से शरीर यंत्रवत काम करता रहता है, चलता रहता है उसमें कोई बाधा नहीं होती, कोई कठिनाई नहीं होती है। इसी तरह से शरीरों से असंग पुरुष जो होते हैं वे अपनी असंगता में आप प्रतिष्ठित रहते हैं और शरीर यंत्रवत काम करता रहता है। तो करना होने में बदल जाए यह बहुत बढ़िया बात है, बहुत ऊँची बात है। अब भाई मेरा पूछ रहा है कि इसके लिए मुझे क्या करना चाहिए। तो करना होने में बदल जाए इसके लिए अपने को जो भी काम सामने मिला है उसको बड़ी सावधानी से कर डालना चाहिए।

यह बिल्कुल प्रारम्भ की बात हो गई है और आपको कैसे मालूम होगा कि करना होने में बदल गया तो उसका अर्थ यह है कि अपने पर आपको कोई strain नहीं मालूम होगा, श्रम नहीं मालूम होगा, थकान नहीं मालूम होगी, सफलता-विफलता का प्रभाव नहीं मालूम होगा। कुछ नहीं। जैसे करते समय आप असंग हैं ऐसे ही उसके शुभ-अशुभ फलाफल में भी प्रसन्न हैं, शांत हैं, स्थिर हैं अपने पर उसका कोई असर नहीं हो रहा है। तो ऐसा होता है तो कर्म क्षेत्र की पहली बात यह है कि जितनी क्षमता है अपने में उसको खर्च करने में चूकें नहीं। खर्च करें तो सर्वहितकारी भाव से करें। और छोटा से छोटा काम जो हाथ में लें तो पूरी विधि से उसको ठीक करें। और करने के साथ-साथ राग-निवृत्ति पर दृष्टि रखें, किए हुए कर्म की फलासक्ति अपने में न रखें।

ऐसा होना ही चाहिए। ऐसा हो जाए तो बहुत अच्छा है। और होता हुआ नहीं दिखता है तो सत्य पर से हट जाओ, थोड़ा बहुत असत्य का मिश्रण कर लो, सहारा ले लो कि किसी तरह से काम तो पूरा हो। तो काम पूरा होने पर दृष्टि चली गई और सत्य पर से दृष्टि हट गई तो काम बहुत बढ़ गया, हुआ कुछ नहीं।

एक जगह एक पण्डित जी कथा कर रहे थे तो बहुत दोहरा रहे थे बारम्बार कि अरे भई जैसे आटे में नमक डाला जाता है तो इतना सा आटा होगा तो इतना सा उसमें नमक डालेंगे। तो ऐसे ही जरूरत पड़ने से सत्य के बीच में इतना सा असत्य मिला सकते हैं। तो इस बात को बार-बार दोहरा रहे थे तो हमको इतना बुरा लग रहा था। हमने कहा कि आटे में नमक मिलाने में और सत्य में असत्य को मिलाने उसमें कोई तुलना है क्या? तो हमको तो बड़ा अजीब सा लग रहा था। हमने कहा कि लोग तो वैसे ही घबराए हुए रहते हैं सामने जो काम उनके आ गया उस काम को समाज में सफलतापूर्वक दिखलाने का राग इतना अधिक होता है कि आदमी ढुलमुल करता रहता है अरे भाई जाने दो इतनी-सी झूठ तो बतानी ही पड़ेगी। अब जाने दो इतनी सी बात बदलकर बताने में क्या है, तो कह ही डालो। तो आदमी तो ऐसे ही दुविधा में फँसा रहता है और पंडित जी कथा कह रहे थे और बारम्बार सुनाते जा रहे थे तो हमको ऐसा लगा कि पंडित जी जरूर ऐसा करते होंगे। खुद इनके भीतर अपने में confidence नहीं है कि सत्य में असत्य मिलाए बिना काम चल सकता है। इसलिए बार-बार उसकी पुष्टि कर रहे हैं। तो देखने में लगता है कि व्यवहार-कुशलता का यह भी एक ढंग है कि अब जरूरत पड़ गई तो उसमें थोड़ा असत्य भी मिला दो। लेकिन आप देखिए कि काम सफल हो गया कि आपकी सारी साधना ही विफल हो गई। कैसा लगता है? साधना विफल हो गई न। तो कौन-सा काम निकला भाई? अगर हम यह कहें कि काम चलता नहीं है।

बोध गया में विनोबा जी का बनाया हुआ समन्वय आश्रम है। बोध गया में बुद्ध भगवान का स्थान जो है उसके पास ही वह आश्रम बना हुआ है। तो वहाँ पर 1969 में Meeting of Minds आराध्य देवाकर जी ने बुलाया था। स्वामी जी महाराज गए थे। हम सब लोग गए थे। बहुत से साधु संतों को बुलाया था उन्होंने, यह कहने के लिए कि भई अब देश का कल्याण कैसे हो। राजनीतिज्ञों को, नेताओं को क्या करना चाहिए। बहुत से संत आए थे और बहुत से संत नहीं आए थे, तो जो लोग नहीं आए थे उन्होंने अपने-अपने विचार व संवाद लिखकर भेज दिया था। तो स्वामी चिन्मयानन्द जी का नाम सुना होगा आप लोगों ने। 'डिवाइन लाइफ सोसायटी' के सेकेट्री आजकल हैं। शिवानन्द जी महाराज के शिष्य हैं। तो चिन्मयानन्द जी ने अपना विचार लिखकर भेज दिया था। तो उन्होंने लिखकर भेजा था कि तुम लोगों ने Meeting बुलाई है बहुत अच्छी बात है। बहुत संत महात्मा आए होंगे बातचीत कर लो सलाह ले लो लेकिन मैं तो राजनैतिक लोगों को और राजनीति की दृष्टि से देश को सँभालने की बात तो कौन कहे मैं तो ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि साधकों के लिए जो जगह-जगह आश्रम बने हैं उन आश्रमों को भी शुद्धता से चलाने में मुझको कठिनाई हो रही है। यह उन्होंने लिखकर भेजा था मैंने सुना था उनका पत्र पढ़कर सुनाया गया था। तो कठिनाई हो रही है ठीक है, अब कठिनाई को हल कीजिएगा कि अपनी साधना कीजिएगा। अच्छा, अब कठिनाई को हल करने के लिए आटे में नमक डाल देना आपने स्वाभाविक मान लिया तो करने का राग अगर मिटा नहीं। राग मिटाने की साधना नहीं बन पाई आपकी तो सेवा आश्रम का क्या अर्थ हुआ सेवा का अर्थ क्या हुआ? साधना का अर्थ क्या हुआ? ऐसे तो सब लोग कमा रहे हैं, खा रहे हैं, निर्वाह हो ही रहा है और जो लोग अपने को साधक नहीं कहते हैं और जो लोग आश्रमों में नहीं रहते हैं, वे सब लोग मिथ्यावादी होते हैं

क्या ? जी ! सब नहीं होते। सर्वांश में मिथ्यावादी होते हैं ? नहीं होते। साधकों की सूची में नाम लिखाए बिना और आश्रमों में वास किए बिना निज विवेक का आदर करने वाला आदमी समाज में होता है कि नहीं होता है ? होता है। ठीक है न। तो निज विवेक के आदर की महिमा है और निज विवेक के आदर में हम लोग अधिक-अधिक बलिष्ठ हो जाए, इसी के लिए सारा इन्तजाम है। तो निज विवेक के आदर पर ही पर्दा डाल दिया तो कौन-सा काम निकला भाई। करने का राग समाप्त नहीं हुआ तो दुनिया का कौन-सा कल्याण किया मैंने।

तो करने का राग जो है, जैसा स्वामी जी महाराज ने खोज की है जैसे स्पष्ट शब्दों में कहा है वैसा और किसी के ध्यान में आया है कि नहीं ? मुझे तो शास्त्रों का ज्ञान नहीं है लेकिन जो लोग जानते हैं वे लोग कहते हैं कि ये बिल्कुल ही विलक्षण बात सुनने में आई कि एक गिलास जल तुम ठीक प्रकार से नहीं पिला सकोगे तो तुम ध्यान नहीं कर सकोगे। और लोग जब ध्यान-हवन, जप-तप में लग जाते हैं तो कहते हैं कि अब मेरा घर के काम में मन नहीं लगता तो मुझे लगता कि कहीं खटका है, गड़बड़ है क्योंकि अध्यात्म-जीवन में न कर्त्तव्य में नीरसता आती है न कर्त्तव्य से जी ऊबता है, न कर्त्तव्य से आदमी हटता है। यह है उसकी खास बात। प्रारम्भिक दिन जो है, हमारे जैसे हम लोगों ने अपनी साधना आरम्भ की है तो उन प्रारम्भिक दिनों में क्या करने से मेरा करना होने में बदल जाएगा इस पर ध्यान देना हो तो यहीं से आरम्भ करो।

जितनी सामर्थ्य है उसको खर्च कर डालना जरूरी है। रखना नहीं चाहिए, जी चुराना नहीं चाहिए किसी प्रकार से। और दूसरी बात यह है सही करना चाहिए गलत नहीं करना चाहिए। और तीसरी बात यह है कि राग-निवृत्ति के लक्ष्य को सामने लेकर करना चाहिए। और कोई लक्ष्य जीवन में रखना नहीं चाहिए। तो लक्ष्य की पूर्ति हो जाए, जीवन की माँग पूरी हो जाए, दुख-निवृत्ति, चिर-शान्ति जीवन-मुक्ति भगवत-भक्ति जो भी

आपको अच्छा लगेगा वह एक ही में सब शामिल है। इसी पर दृष्टि रखकर हम लोग काम करना शुरु करेंगे तो आगे चलकर करना होने में बदल सकता है। और प्रारम्भिक कदम में गलती होती रहेगी तो बहुत मुश्किल पड़ेगी। एक बात हो गई।

दूसरी बात यह है कि प्रेमी जनों का करना भी होने में बदलता है। क्योंकि वे भी बिल्कुल अहंशून्य होते हैं और जो लोग अहंशून्य होते हैं जिनको कभी भी ऐसा नहीं लगता कि यह काम मेरे करने से हुआ, ऐसा कभी नहीं लगता। तो सारी शक्ति मेरे दाता की है, मेरे परमात्मा की है, मेरे भगवान की है, हमारे प्रभु की है ऐसा वे मानते हैं तो प्रभु की शक्ति से प्रभु का काम हो रहा है इस बात का पूरा, पक्का, विश्वास जिसको है, उसमें कर्त्तापन का अभिमान नहीं आता है और अभिमान नहीं आता है तो उसका भार भी उस पर नहीं पड़ता है, strain भी उनको नहीं लगता है, उसमें किसी प्रकार का विकार भी शामिल नहीं होता है और करना होने में बदल जाता है।

स्वामी जी महाराज के अपने जीवन का अनुभव है। उन्होंने बताया था हम लोगों को मुँह जबानी बातचीत करते-करते कहा था और वह टेप में भी है Introduction में और जगह-जगह साहित्य में भी है। उन्होंने कहा था कि देश की सेवा करते समय जब खूब काम कर रहे हैं और जय-जयकार के नारे लगा रहे हैं। पुलिस की लठियाँ खाने के लिए बहुत उत्साहित हो रहे हैं। उत्साहित बहुत हुए थे और अपने सिर पर हाथ फेरते हुए कहते कि गंजा सिर, बाल तो कटा हुआ होता था, नई उम्र थी। तो मुण्डन नहीं हुआ था, बाल कटे हुए थे पूरा चिकना घुटा हुआ तो कहते बड़ा शौक लगता देवकी जी, इस पर पुलिस की लाठियाँ पड़ेगी बड़ा मज़ा आएगा। लेकिन किसी पुलिस की लाठी उस पर पड़ी नहीं।

यह भी बताते थे, पड़ती कैसे। वह तो भगवत्-अनुराग से भरा हुआ जीवन था। उसकी रक्षा करने वाले को इतना कष्ट देना उन्होंने पसन्द नहीं किया होगा तो लाठी पड़ी नहीं, लेकिन ऐसा लगता था कि जैसे कोई भी मामूली आदमी एक शुभ प्रेरणा से प्रेरित हो करके काम जैसे करता है एकदम तन्मय हो करके, उसी तरह से स्वामी जी महाराज कर रहे थे। व्याख्यान देना और नारे लगाना और जिला कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट थे और प्रेसीडेन्ट की हैसियत से यह सब काम करना। ऐसे तन्मय होकर कर रहे थे जैसे कि कोई भी व्यक्ति करेगा। और संत ने जब पूछा तो उन्होंने बिल्कुल निर्भीक होकर बिल्कुल मुक्त कंठ से घोषित कर दिया कि मैं त्रिकाल में भी कुछ भी करता-कराता नहीं हूँ। मैं सदैव अपनी अखण्डता में ही स्थित हूँ।

तो करना होने में बदल गया था न, वे कुछ नहीं कर रहे थे, उनको अपना कुछ करना ही नहीं था। व्याख्यान देते समय आप लोगों ने सूना होगा बातचीत करते-करते कभी-कभी कह देते कि अरे भई, जैसे तुम सुनते हो, वैसे मैं भी सुनता हूँ यह भी कहा। कभी कोई बीच में से पूछे कि महाराज जी आपने ऐसी बात कही थी ऐसा कहा था, सो क्या था? अरे भाई, जो निकल गया सो निकल गया फिर कहते जैसे तुम सुनते हो वैसे मैं भी सुनता हूँ। मैं भी तो श्रोता हूँ। तो इसका मतलब क्या है ? कि उनका बोलना न बोलने के समान था। जिस समय वह बोल रहे थे हम लोग के देखने में वे वक्ता थे उस समय वह सब प्रकार से शांत श्रोता थे।

ऐसा अहंशून्य व्यक्तित्व होता है। तो कार्य करते हुए भी उसको यह feel नहीं होता कि मैं कर रहा हूँ। आश्रम में कभी-कभी जो हम लोग टेप कर लेते कहीं भी, वृन्दावन में भी बहुत बार हुआ और दूसरी जगह भी। तो सुन लेते स्वामी जी महाराज। थोड़ी दूर पर कहीं बजा कर देखते

होते कि देखें, ठीक आया है अथवा नहीं आया। और अपना ही कोई sentense उनके कान में पड़ जाए और सुन ले तो खूब ताली बजाते खूब हँसते और कहते वाह बाबा जी आपके बड़े ठाट हैं वाह बाबाजी। ऐसे जैसे दूसरा कोई दूसरे पर remark दे, ऐसे कह देते। तो इसका अर्थ यह है कि सब कुछ करते हुए भी न करने का जीवन उनको प्राप्त था। यह असम्भव नहीं है, यह कल्पना नहीं है, अनहोनी बात नहीं है। होती है, अनेकों संत अभी भी ऐसे हैं कि सब कुछ करते हुए भी न करने के समान बिल्कुल शांत, निश्चित, निर्भय, निर्द्वन्द्व जिनके अन्दर किसी प्रकार का विक्षोभ भी पैदा न हो ऐसा करके रहते हैं। तो वहाँ तक पहुँचने के लिए अपने लोगों को क्या करना चाहिए। तो यहीं से आरम्भ करना चाहिए। जहाँ भी कहीं अपने में सामर्थ्य मालूम हो और करने का अवसर मिले चूकना नहीं चाहिए। जरूर खर्च करना चाहिए और प्रेमपूर्वक करना चाहिए, ज्ञानपूर्वक करना चाहिए, सद्भाव पूर्वक करना चाहिए, जीवन के लक्ष्य को सामने ले करके करना चाहिए। और किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर के काम करने में गलत-सलत, सत्य-मिथ्या का मिश्रण नहीं करना चाहिए। हो गया भगवत् शरण भाई।

प्राप्त शक्ति का सदुपयोग करने से करने का राग मिटेगा। और शक्ति मेरी है, मैंने किया और मैंने विशेष किया दूसरे लोगों ने नहीं किया और मेरी कृति का recognition करना चाहिए तो अगर यह रहेगा भीतर कि मैंने जो किया वह समाज की दृष्टि में आना चाहिए कि मैंने किया तो समाज recognise करेगा। इतनी अँग्रेजी तो आप जानते ही हैं। समाज recognise करेगा तो उसका फल क्या होगा कि हमको इच्छित वस्तु, सुविधा-सम्मान मिल जाएगा। तो इसलिए जो अपने को बहुत ही practical inteligence वाले लोग समझते हैं तो वे लोग ऐसा काम नहीं करते हैं कि श्रम भी लग जाए, समय भी लग जाए, योग्यता भी लग जाए

और लोगों की नजर में भी न आए और लोगों के लिए फलदायक भी न हो, तो ऐसे काम में हाथ नहीं डालते हैं। ऐसे काम में हाथ डालते हैं कि काम अगर करे तो लोगों की नजर में आए कि इन्होंने इतना किया। और फिर उसका परिणाम बनेगा, प्रतिफल मिलेगा उसका भोग करेंगे। तो अगर इस प्रकार की मनोवृत्ति है तब तो राग मिटने का कोई प्रश्न ही नहीं है। तब तो राग नहीं मिटेगा लेकिन जिसको राग से मुक्त होना है उसको तो इन बातों पर ध्यान नहीं देना होगा उसे शक्ति का सदुपयोग करना होगा और करते हुए भी राग-रहित होकर रहना पड़ेगा।

उसके सम्बन्ध में मेरी एक सलाह है आपके लिए। सब लोग अपने लिए न लगाना। व्यक्ति-व्यक्ति का, साधक-साधक का जो वर्तमान हाल है, वह एक-दूसरे से भिन्न है। तो ये जो भाई है मेरे भगवत् शरण जी बहुत ईमानदार व सच्चे आदमी हैं लेकिन किसी न किसी तरह से कुछ मानसिक complication है, इसलिए मैं इनकी दशा के अनुसार उत्तर दे रही हूँ। आपको मैंने पहले भी बताया था और अब भी बता रही हूँ कि आप बिल्कुल सहज भाव से देख लीजिए कि क्या सही है क्या गलत है और उसको कर डालो और उसके बाद उसकी छानबीन मत करना।

उसमें गहराई में उतरना ही मत क्योंकि मानसिक कमजोरी के कारण जिसकी निश्चयात्मक बुद्धि की ताकत घट जाती है, वे फैसले पर पहुँच ही नहीं पाते हैं। इसको सोचेगें फिर इसमें भी उनको लगेगा कि अमुक-अमुक गलती है। दूसरा alternative लेगें तो उसमें भी लगेगा कि कहीं गलती न हो जाए। फिर तीसरी बात लेंगे तो उसमें भी लगेगा कि कहीं कभी न रह जाए। तो मानसिक दुर्बलता को ऐसा मान लीजिए कि जैसे अपने पास एक यंत्र है काम करने का और वह कुछ बिगड़ गया है। तो जितना वह कर सकता है उतना काम उससे ले लो। बहुत ज्यादा उसके भीतर प्रवेश करने से फिर आप तकलीफ में पड़ जाते हैं फिर द्वन्द्व की दशा पैदा हो जाती है इसलिए कभी मत सोचना।

तुम ईमानदार आदमी हो। जो सोचोगे, जो करोगे वह किसी के लिए हानिकारक हो ही नहीं सकता और आज तक हुआ भी नहीं। आपका कोई काम किसी के लिए हानिकारक नहीं है। बस इतने से सन्तुष्ट रहना, ज्यादा गहराई में मत जाना और नाम रखा है स्वामी जी महाराज ने भगवत्-शरण। ठीक है न, तो जो आप नहीं कर सकते हैं उसकी जिम्मेदारी अपने शरण्य पर डालकर बिल्कुल निश्चिन्त रहो। तो मानसिक शक्ति बढ़ जाएगी।

तब भगवत्शरण जी ने कहा दीदी, आपको भी इस मामले में बिल्कुल भयभीत नहीं होना चाहिए। मत सोचिए कि क्या जाने मुझमें इस प्रकार का भ्रम हो जाए। नहीं होगा। इसलिए नहीं होगा कि किसी के पास इतनी सामर्थ्य नहीं होती है कि वह अखण्ड रूप से गतिशील रहे। इतना भी कर्मठ व्यक्ति होगा क्या? इसलिए कि गतिशीलता के मूल में शांति रहती है तो शांति में से गति उत्पन्न हुई और शांति में जाकर विलीन हुई तो काम हो गया। तो जहाँ वह जाकर विलीन होगी वहाँ शांति-सम्पादन की साधना में हम लोग लग जाते हैं। सवेरे उठ कर मूक सत्संग करो, दोपहर के समय भोजन के बाद विश्राम के समय विश्राम में रहो, रात्रि को सोने से पहले मूक सत्संग में रहो। जितनी बार जिसको मौका मिले समर्पण भाव है, तो समर्पण योग में रहो। और विचारक हो तो मूक सत्संग में रहो। तो वह भूल जो आप बता रही हैं, नहीं होगी। साधकों से नहीं होगी और young age में, नई उम्र जब होती है, जब क्रियाओं का वेग ज्यादा रहता है तो आदमी ज्यादा शक्ति खर्च कर लेता है, करना पसन्द करता है और होना भी चाहिए लेकिन अब आपके लिए ऐसी कोई दिक्कत नहीं है। एकान्त से अदम्य शक्ति तो कोई है ही नहीं है।

जितनी है तो उतनी का सदुपयोग करने की बात है। तो अधिक से अधिक विश्राम का सम्पादन आपके लिए बिल्कुल स्वाभाविक पड़ेगा।

और अगर मन की चंचलता नहीं रुकती है। शरीर शिथिल हो गया ऐसा होता है न कि काम करते करते शरीर तो थक गया और मन की चंचलता रुक ही नहीं रही है। तो नहीं रुक रही है तो इसका उपाय यह नहीं है कि उठकर के कुछ करने लग जाओ। अगर समर्पण भाव की साधना है तो प्रभु के समर्पित करके और छोड़ दो। थोड़ी देर उसमें हलचल मचेगी थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें आएँगी फिर धीरे-धीरे अपने आप वह शांत हो जाएगा। तो अपने निर्णय में संदेह कभी नहीं करना चाहिए।

किसी को नहीं करना चाहिए। तो अपना कल्याण मुझको अभीष्ट है इसलिए निर्णय गलत हो नहीं सकता। दूसरों का निकटवर्ती, जन-समाज का हित मुझको अभीष्ट है इसलिए निर्णय में गलती नहीं हो सकती। अब रही बात Level of Intellegence की और हमारी तरह जिनको practical ability कम हो तो इस प्रकार की कमी पर भी मैंने अनेक अवसरों पर देखा है कि जो बात मेरी समझ-बूझ के, मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात थी लेकिन भीतर में भाव की शुद्धि होने से कोई करने वाला उसको ठीक-ठाक कर देता है। जब हो जाता है तब मुझको दिखाई देता है कि मैं तो इतना सोच ही नहीं सकती थी, मैं तो इतना समझ नहीं सकती थी, मेरे वश की तो बात ही नहीं थी। उसने सँभाल दिया। तो अपना तो एक ही है। भई दो चार है नहीं कि पता लगाएँ कि किसने किया। दो चार हो तो पूछताछ कर पता लगाएँ कि यह काम किसने किया। अपना तो एक ही है। तो पूछने की जरूरत नहीं, खोजने की जरूरत नहीं इसलिए बिल्कुल निर्द्वन्द्व हो जाइए। हर समय हाय काम, हाय काम वह भी अच्छी बात नहीं है। अब सब समय कोई कर नहीं सकता है। केवल करने से राग से धुन में फँसा रहता है। तो धुन नहीं जाएगा इसका निवारण हो जाएगा। बहुत सहज से होगा।

अरे वह कहने से होगा या कर्त्तापन का अभिमान मिटाने से होगा? कहने से तो नहीं जाएगा। लक्ष्य वैसा रखो फिर अनासक्त बनो, वीतराग बनो, समर्पित हो फिर हो जाएगा, तो हो जाएगा। जब लगता है कि मैं कर रहा हूँ तो सावधान रहना चाहिए न। ऐसे तो वेदान्त दर्शन के आधार पर मैं ब्रह्म हूँ। तो एक वेदान्ती सज्जन हमसे कहने लगे कि बहनजी, अगर जैसे लोग इन बातों को कहते हैं वैसे उनकी बातों को मान लीजिए तो उनके मुख से कहलवा दीजिए कि दुनिया में बहुत से ब्रह्म हैं। तो भई सूत्र के वाक्य जो होते हैं, सत्य के संकेत, वह तो आदर्श है न वहाँ तक चलने की निष्ठा है। आज जो अपनी दशा है वह देख देखकर चलना पड़ेगा।

वे दिल्ली में High Court के जज थे। 1-2 बार हमारे पास भी आए थे भीखमचन्द्र मिश्रा। करपात्री जी से सन्यास लिया है, बड़ा कठोर सन्यास। दण्डी स्वामी हो गए। 2 ही साल हुए हैं बने हुए तो जगह-जगह पर मुझसे उनकी भेंट होती रहती थी। राम तीर्थ आश्रम में देहरादून में थे तब वहाँ पर मिले थे, दिल्ली में आए थे, दिल्ली से यहाँ आए थे वृन्दावन में मिले थे।

विश्वनाथ बाबूजी ने बहुत कोशिश की कि मानव सेवा संघ से इनकी तृप्ति हो जाए। 2-4 बार यहाँ ले आए। हम लोगों के यहाँ भाषण भी दिलवाया, बात भी करवाई लेकिन जिनकी जैसी बनावट होती है, तो उनको वह सब पसन्द था। बहुत दिनों तक एकान्त में अनुष्ठान किया उन्होंने, उसके बाद करपात्री जी से सन्यास लिया, वह ही उनको पसंद था। अगर इसी तरह से हर आदमी कहने लग जाए कि मैं ब्रह्म हूँ तो फिर वह तो यही कहेगा कि दुनिया में बहुत से ब्रह्म है। तो करना होने में बदल जाए यह बात तो बहुत बढ़िया है लेकिन अहम्-शून्य होकर देखो तब न

पता चले। और नहीं तो उल्टा-सीधा काम करो और कहो कि हो रहा है।

दाल पकाते समय नमक की जगह चीनी डाल दो और कह दो कि मैं कर नहीं रही हूँ, हो रहा है। यह कोई साधन की बात थोड़े ही है। नकल करने से नहीं बनता, महावाक्यों को दोहराने से नहीं बनता। साधना करते-करते वहाँ पहुँचें तो काम बनता है। तो भगवत् शरण भाई ने तो यह पूछा कि मुझे क्या करना चाहिए तो प्रश्न कितना अच्छा है। बेचारे दूसरों पर नहीं ले जा रहे हैं generalise करके नहीं बोल रहे हैं।

●

प्रवचन 12

उपस्थित महानुभाव, सत्संग-प्रेमी माताओ, बहनो और भाइयो !

प्रभु की अहैतुकी कृपा से मानव-जीवन मिला और उन्हीं का दिया हुआ अवसर है कि हम सब लोगों को जीवन के सत्य को स्वीकार करने का अवसर मिला।

इस समारोह की यह आखिरी बैठक है। तो इस समारोह की यह आखिरी बैठक है परन्तु हमारे जीवन में सत्संग की तो अखण्ड़ता है। सब समय सत्संग के प्रकाश में ही चलना चाहिए कब तक ? जब तक कि यह जीवन पूर्ण न हो जाए। तो इस दृष्टि से एक सप्ताह के भीतर जो भी कुछ जीवन का सत्य हम लोगों के सामने आया, जिस पर हम लोगों ने विचार किया उसमें से कुछ खास चुनी हुई बातों को फिर से दोहरा लेना चाहिए। इसलिए कि उन पर हम सम्पूर्ण जीवन में प्रयोग करते रहे। तो संघ के प्रणेता संत ने एक बहुत क्रान्तिकारी बात हम लोगों के सामने यह रखी कि जीवन के पूर्ण विकास के लिए श्रम की ओर से विश्राम की ओर बढ़ना चाहिए। ऐसा नहीं कि संसार में शरीरों का निर्वाह करने के लिए अनेक प्रकार के श्रम हम कर रहे थे, अब शरीरों से अतीत अविनाशी जीवन से मिलने के लिए भी कुछ श्रम करना पड़ेगा। ऐसी बात नहीं है।

क्या करें ? तो महाराज जी कहते हैं कि भई श्रम तुम्हारे पास है, श्रम करने की सामर्थ्य है तो सेवा करो, खर्च करो उसे। और जो तुम्हें शान्ति-सम्पादन का समय मिले तो श्रम-रहित होकर अविनाशी जीवन की और आगे बढ़ो। तो श्रम होता है शरीरों के लिए, श्रम होता है शरीर और संसार के सहयोग से। श्रम होता है, शरीर और संसार को सहयोग देने के लिए। और साधक की दृष्टि में श्रम किसलिए ? अब तक जितनी बातें निवेदन की मैंने वे सबके लिए समान रूप से सत्य है। और साधक की

दृष्टि किस बात पर रहनी चाहिए कि श्रम करते हैं हम विश्राम पाने के लिए। तो ऐसा श्रम करना चाहिए और इस ढंग से करना चाहिए कि श्रम के अन्त में मुझे सहज भाव से बिना किसी विधि-विधान के स्वाभाविक रूप में विश्राम मिले। तो एक वाक्य अगर सामने रखा जाए तो क्या कहेंगे हम कि श्रम करना है, विश्राम पाने के लिए। एक बात यह विशेष बताई।

स्वामी जी महाराज ने दूसरी बात यह बताई कि भौतिक जगत् के कल्याण में और व्यक्ति के कल्याण में अन्तर नहीं है। ऐसा नहीं है कि जो लोग संसार की सेवा में लग जाते हैं, वे आध्यात्मिक विकास से वंचित हो जाते हैं। ऐसा नहीं है। और जो लोग आध्यात्मिक विकास में लग जाते हैं, वे संसार के काम नहीं आते, ऐसी बात नहीं है। व्यक्ति और समूह में अविच्छिन्न सम्बन्ध बताया महाराज जी ने। इसलिए उन्होंने जगत् की सेवा और शांति की अभिव्यक्ति, जगत् की सेवा और भगवत-भक्ति दोनों को परस्पर विरोधी नहीं बताया। इसलिए कि सेवा करने की सामर्थ्य, सत्य पर विचार करने की सामर्थ्य और सर्वस्व समर्पण करने की सामर्थ्य एक ही व्यक्तित्व में होती है।

इसलिए उन्होंने तीनों में योग बताया कि जो भगवत्-समर्पित हो करके जीना पसंद करेगा अर्थात् उस अनन्त परमात्मा से सदा के लिए अभिन्न होना पसन्द करेगा उसको त्याग से भी काम लेना पड़ेगा और सेवा से भी काम लेना पड़ेगा। क्योंकि ईश्वर से अभिन्न होने के लिए कोई श्रम अपेक्षित नहीं है, अहं का परिवर्तन अपेक्षित है। अब तक हम जी रहे थे सुख-भोग के लिए, अब इसी क्षण से, इसी वर्तमान में मैंने निश्चय किया है कि अब हम जिएँगे प्रभु की प्रसन्नता के लिए, उनके प्रेम के लिए। तो एक जीना है सुख भोग के लिए और एक जीना है परमात्मा के प्रेम के लिए। तो यह परिवर्तन कि अब मैंने आज से इसी क्षण से सुख-भोग को इन्कार किया और परमात्मा के प्रेम को पसन्द किया इसमें कोई श्रम की बात नहीं है। इसको महाराज जी ने स्वधर्म बताया कि अपने द्वारा व्यक्ति

यह निश्चय लेता है और उसके निश्चय के साथ ही उसका अहम् परिवर्तित हो जाता है। और अहम्-परिवर्तन के साथ ही मन, चित्त, बुद्धि, इन्द्रियाँ सबमें अपने आप से परिवर्तन होने लगता है। तो यह खास बात है। अहम् के परिवर्तन की बात, जिसको स्वामी जी महाराज ने इतना स्पष्ट करके और बिल्कुल essential point के रूप में कि साधक के लिए यह होना अनिवार्य है। अगर उसने अपने अहम् को नहीं बदला, अपने लक्ष्य को नहीं बदला, जीवन के अर्थ को नहीं बदला तो किसी विधि-विधान से भगवत्-भक्ति उसमें उपजेगी, यह सम्भव नहीं है।

एक जो प्रचलित कायदा है जगह-जगह मैंने देखा है। किसी बात के लिए तो मुझे बहुत तकलीफ होती थी देख-देख करके और कभी-कभी हँसी भी आती थी। लेकिन मैंने देखा है कि अहम् के परिवर्तन के लिए असत्य की अस्वीकृति और सत्य की स्वीकृति को प्रधानता नहीं देने से साधकों में, एक बड़ा भारी भ्रम पैदा हो जाता है। वह क्या हो जाता है कि वे प्रारम्भ ही कर लेते हैं नाम जप से, भजन से, कीर्तन से, पाठ से, नित्य नियम से। तो मैंने, पुरुषों के बारे में तो इतना नजदीक से हमको मालूम नहीं है, लेकिन एक जगह पर जहाँ बहुत से साधक लोग ही रहते हैं महिलाओं की मण्डली में मैंने देखा था।

नई-नई उम्र की लड़कियाँ 20 बरस की 22 बरस की कोई 25 बरस की, 28 बरस की बहुत सी लड़कियाँ थी। कम से कम 25 तो होगी, पूरी गिनती मुझे मालूम नहीं है। तो उन लोगों के साधन का ढंग ऐसा था कि सवेरे से उनका बड़ा कठिन नियम बना हुआ था कि इतने घंटे आपको इस तरह से बिताना है, इतने घंटे इस तरह से बिताना है, इतने घंटे नाम-जप करना है। तो भई सबकी रूचि अलग, सबकी शारीरिक दशा अलग। तो 25 में से कुछ तो ऐसी थी जिनका सहज से यह सब नित्य नियम पूरा हो जाता था 11–12 बजे तक और कुछ की शारीरिक दशा अच्छी नहीं रही, तो किसी को आलस्य आता, किसी के पाँव दुखते, किसी की पीठ

दुखती, किसी के सिर में दर्द होता तो उसका पूरा ही नहीं होता। मानसिक दशा भी सबकी अलग-अलग। कोई mentally कुछ ज्यादा balanced है, तो वह नित्य नियम अपना ठीक तरह से पूरा कर लेती है। किसी के मन में बहुत-सी अतृप्त इच्छाएँ परेशान कर रही है तो उसका चित्त एकाग्र होता ही नहीं है, ध्यान लगता ही नहीं है किसी बात में, बड़ी परेशानी से वह अपना पाठ पूरा करे।

तो शाम के समय 4 बजे जब आपस में एक-दूसरे की बातचीत होती तो सब remarks मुझे सुनने को मिलते। एक-दूसरे से Competetion हो जाता। एक-दूसरे के प्रति ऊँचा-नीचा भाव हो जाता। तो जिनसे सहज से हो जाता वे लोग सोचते कि हम अच्छे साधक है। जिनको कठिनाई होती उनको एक हीन भावना आती। तो inferiority, superiorty, competition और उसमें भी अच्छा साधन बन गया तो उसका अभिमान। नहीं बन रहा है तो एक अजीब सी क्षोभ की दशा। तो देख-देख करके मेरे भीतर इतना दुःख होता। मैं सोचती कि देखो आदमी चला है साधन करने भगवान के नाम पर तो वहाँ भी कितने असाधन का सृजन हो रहा है। तो जिन लड़कियों से होता नहीं था, उनके प्रति मेरी बहुत सहानुभूति भी रहती थी। अब क्या करें भई, ऐसा नहीं होता है, पीठ दुःख गई, घुटने दुःख गए। मन में अनेक प्रकार की अशांति है, इतनी दमित इच्छाएँ, विविध स्थितियाँ होती है। तो जो लोग इतने समर्थ होते हैं कि सत्य के प्रकाश में इच्छाओं की अपूर्ति को गिनते नहीं हैं। है तो है—नहीं हुई तो नहीं हुई हटाओ इसे। इतने जो भीतर से सामर्थ्यवान हैं, जिनका चित्त अपेक्षाकृत शुद्ध है, जिनके भीतर की वासनाएँ इतनी प्रबल नहीं है, तो उनके लिए सहज हो जाता है प्रतिकूलता के साथ adjust करना और जिनके भीतर इतनी सामर्थ्य नहीं है अथवा जिनको बहुत अनुकूलता मिली है कि मन में जो आया वह बात पूरी हो गई, माता-पिता ने कर दिया कि

सास-ससुर ने कर दिया कि पति-पुत्र ने कर दिया कि पत्नी, माता, बहन ने कर दिया। यह भी मनुष्य की साधना में एक बड़ी बाधा हो जाती है कि उसको परिवार और कुटुम्बी बहुत अनुकूल मिल जाएँ और हर इच्छा-पूर्ति लोग प्रेम से, स्नेह से, सहज से कर दें। तो ऐसी किसी भी आदत बन गई है अब उसके सामने प्रतिकूलता आ जाए तो इच्छाओं के साथ अपने को अभियोजित करने की सामर्थ्य उनमें नहीं होती।

स्वामी जी महाराज ने आधुनिक मनोविज्ञान में बहुत आगे आने वाली बात को बहुत पहले कह दिया था। आधुनिक मनोविज्ञान वाले लोग अब समझ रहे हैं कि इच्छाओं की अपूर्ति से मनुष्य के मस्तिष्क की ताकत जैसे घट जाती है, ऐसे ही इच्छाओं की पूर्ति होने से भी मस्तिष्क की ताकत घट जाती है। यह बात मनोविज्ञानवेत्ता बहुत बार अब कह रहे हैं, स्वामी जी महाराज ने बहुत पहले कहा। तो चाहे अपूर्ति के कारण क्षोभ रहे, चाहे बहुत अधिक पूर्ति के कारण, मानसिक दुर्बलता आ जाती है। जिसके मन में बहुत सी इच्छाओं ने होड़ जमा रखी है और जो असंतुष्ट है भीतर से उसका भी साधना में मन नहीं लगता, किसी बात में मन नहीं लगता, कोई काम उसको दे दो तो वह जम करके बिल्कुल तन मन लगाकर, उसी काम के साथ रम जाए ऐसा बहुत कम लोग कर सकते हैं।

समझदारी से दबा कर अपने को सँभाल लेना अपने पर जोर डालकर के काम पूरा कर लेना यह बात अलग है। और कुछ काम करने वाले ऐसे होते हैं जो बिल्कुल तन-मन लगाकर उसी काम में रम जाते हैं। तो जिनकी मानसिक दशा संतुलित होती है, स्वाभाविक होती है, स्वस्थ होती है, वे तो ऐसा कर सकते हैं और जिनके मस्तिष्क में भीतर-भीतर अधिक असंतोष है और Tension है तो उनसे नहीं होता है। तो अलग-अलग शारीरिक दशाएँ हैं, अलग-अलग मानसिक दशाएँ हैं। और सब लोग एक समान ध्यान भी नहीं लगा सकते, जप भी नहीं कर सकते। मामूली काम

ही नहीं कर सकते तो यह सब कैसे हो ? तो सब लोगों के भीतर हलचल मची रहती थी। और एक को देखकर दूसरा एक प्रकार का remark pass कर रहा है, दूसरे को देखकर दूसरा कुछ और कह रहा है। अरे भई इनकी तो क्या बात है ? इनकी तो बन गई, कोई कह रहा है। अरे भई यहाँ भी आए तो क्या-क्या करते रहते हैं, साधना करते नहीं हैं। तो केवल एक-दूसरे पर दीनता और अभिमान के प्रभाव से प्रेरित होकर अजीब-अजीब तरह का व्यवहार करना देखकर के बहुत दुःख होता था।

स्वामी जी महाराज के पास आई ही थी मैं। देखती रहती थी सब। मानव सेवा संघ की पद्धति में स्वामी जी महाराज ने सत्संग से पहले साधन का कोई क्रम किसी को पकड़ाया नहीं कभी। कहा, पहले सत्संग करो, सत्य के प्रकाश में जीवन को पहले अच्छी तरह से समझो, व्याख्या करो उसका निरीक्षण करो अपने जाने हुए असत् का त्याग करो। तो जीवन के सत्य को स्वीकार करने की बात करो। अधिक से अधिक महाराज जी ने हम लोगों की शक्ति, समय सत्संग में लगाया, बिना सत्संग के, बिना स्वीकृति के बदले किसी साधन-पद्धति को पकड़ाया नहीं। गुरु ने कह दिया ऐसा करना, तो न करते बने न छोड़ते बने। बहुत लोग असमंजस में पड़ जाते हैं। करना चाहते हैं तो होता भी नहीं है और गुरु ने कह दिया कि ऐसा करो तो छोड़ते भी नहीं बनता है, डर लगता है कि छोड़ कैसे दे तो फिर क्या करेंगे।

मानव सेवा संघ में साधकों को इस प्रकार के द्वन्द्व में कभी नहीं डाला। आप लोग इतने भाई-बहन यहाँ बैठे है, जिन लोगों को इस पद्धति का परिचय है, कोई नहीं कह सकता कि स्वामी जी महाराज ने सत्संग कराया हो पीछे और साधना पकड़ा दी हो, कि चलो बेटा बैठकर ऐसा-ऐसा करो। कभी नहीं किया, करने को नहीं कहा। तो एक यह विशेषता है जिस पर जहाँ तक दृष्टि जाए अपनी, हम लोगों को अपना दृष्टिकोण इस सम्बन्ध

में बड़ा स्पष्ट रखना चाहिए और दूसरे साधकों के दृष्टिकोण को भी इतना स्पष्ट रहने देना चाहिए। अच्छा उपवास करते नहीं बनता है, तो कोई बात नहीं। अब कोई निर्जला एकादशी कर ले, कोई न कर सके तो जल पीकर रह जाए। कोई इतने से भी न बने तो दूध पीकर रह जाए। किसी से उतना भी न बने तो फलाहार भी कर लो।

इन बातों में मानव सेवा संघ कभी किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत साधना को कुछ नहीं कहता है। भई शारीरिक दशा है, शरीर धर्म है। जितनी तुम्हारी ताकत है, जैसे तुम्हारी शक्ति है, वैसे करो। कभी-कभी देखा गया है बहुत कमजोर और दुर्बल साधक भी संकल्प के बल पर बड़ा कठिन-कठिन तप कर लेते हैं। ऐसा भी देखा है। अभी मैं अगस्त-सितम्बर महीने में राजस्थान में थी। जोधपुर में काफी गर्मी थी उन दिनों में। जैन मत के हिसाब से कुछ विशेष दिन चल रहे थे कुछ उनके त्याग-तप के। तो किसी ने 6 दिन तक निर्जल व्रत किया और किसी ने 21 दिन तक किया, किसी ने $1\frac{1}{4}$ महीने तक किया किसी ने 3 महीने तक किया। एकदम निर्जल व्रत। जल भी नहीं पीते हैं।

घरबारी महिलाएँ, जिस घर में मैं ठहरी थी उस घर में जो बहू थी वह हर दूसरे दिन शाम को बाहर जाने को तैयार। कहे माता जी, आज उसके यहाँ जाना है। क्यों जा रहे हैं, क्या बात है भई? तो उसने 21 दिन का व्रत लिया है। तो आप जाकर क्या करेंगे? तो आस पास के सब जान-पहचान के लोग आते हैं, उसके पास बैठकर भजन गाते हैं, प्रार्थना करते हैं, उसका आदर-सत्कार करते हैं, अभिनन्दन करते हैं कि इसने इतना कठिन तप किया है इतना कठिन तप किया है। तो ऐसी-ऐसी बातें भी चलती है तो उसको मैं क्या कहूँ। शारीरिक बल पर भी काम होता है, संकल्प के बल पर भी काम होता है लेकिन सबसे एक समान नहीं हो सकता।

बहुत दिनों के बाद एक महिला उसी घर में आई, तो वह बहू हमको आकर कहने लगी कि माताजी, ये ही हैं जिनके घर मैं जाया करती थी। आई थी मिलने के लिए। इन्होंने $1\frac{1}{2}$ महीना या 3 महीने का व्रत किया था। तो आई और थोड़ी देर बातचीत करने के बाद एकदम पसीने से परेशान हो गई, फिर जमीन पर लेट गई। हमने कहा कि क्या हो गया भाई, इनकी तबियत खराब है? तो उन्होंने कहा कि इन्होंने उस समय जो व्रत किया था, उसकी कमजोरी अभी गई नहीं है और अब घर में कोई सेवा करने के लिए है नहीं। सब लोग अपने-अपने घर चले गए। तो बच्चों को भी देखना है, घर भी देखना है। इनको दुर्बलता लगती है, परेशान रहती हैं। यह सब भी मैंने देखा है।

मानव सेवा संघ ने इस प्रकार की साधना का प्रतिपादन नहीं किया, Compulsory नहीं बताया कि आपको यह करना ही चाहिए। शरीर धर्म तो शरीर के साथ निभेगा और स्वधर्म है तो स्व के साथ निभेगा। तो स्वधर्म पर स्वामी जी महाराज ने ज्यादा जोर डाला। प्राप्त सामर्थ्य को दुर्बलों की सेवा में लगाना यह शरीर-धर्म की बात हो गई। शरीर से शरीरों की सेवा बनेगी। तो सब जो कुछ मिला हुआ है, उसमें मेरा व्यक्तिगत कुछ नहीं है तो निर्मम होना यह स्वधर्म की बात हो गई। इस संसार में ऐसा कुछ नहीं है, जो मेरे जीवन को पूर्ण बना सके। दुःख-रहित जीवन की, चिरशांति की, जीवन-मुक्ति, भगवत् भक्ति की प्राप्ति करा सके। ऐसा इस जगत् में कुछ नहीं है, इसलिए मुझे कुछ नहीं चाहिए। तो अचाह होना उन्होंने स्वधर्म बताया। और सर्व समर्थ प्रभु हम सभी के अपने हैं और अपने में है अतः उन्हीं के होकर रहना मुझे पसंद आया तो प्रभु की शरणागति, प्रभु का आश्रय, हरि-आश्रित होकर रहना, इसको स्वधर्म बताया। तो ज्यादा से ज्यादा जोर इस बात पर है कि हम लोग स्वधर्म और शरीर धर्म का पालन स्वेच्छा से करने के लिए तैयार हो जाएँ, इस पर ज्यादा जोर है। ऐसा नहीं है कि शरीर चलता भी नहीं है, हिम्मत भी

नहीं है, उसमें बर्दाश्त करने की ताकत भी नहीं है तो भी एक साधना ऐसी जबरदस्त आपके सिर पर बैठ गई, कि मरे भी जाओ और किए भी जाओ। होता भी नहीं है और परेशान रहो। तो ऐसी बात मानव सेवा संघ में नहीं कही गई है।

आज एक सज्जन हमारे पास आए। विवाह-शादी की बात चली, निमन्त्रण की बात चली तो मैंने कहा कि अगर आप अपने सम्बन्धी का हित चाहते है तो उनको यह सलाह दीजिए कि आश्रम-वास का पूरा लाभ उठाएँ अर्थात् विवाह-सम्बन्धी कार्यों में भाग लेना अनिवार्य न माने। मानव सेवा संघ केवल साधकों को सलाह देता है कि अगर आप सीमित मोह के सम्बन्धों को तोड़कर, परमात्मा के नाते असीम सम्बन्ध में असीम परिवार में शामिल हो करके हृदय को विस्तृत करना चाहते हैं, लोभ, मोह से मुक्त होना चाहते हैं, दीनता और अभिमान से मुक्त होना चाहते हैं, अपने पराए का भेद मिटाना चाहते हैं तो ऐसा करिए।

हम लोगों को सिखाया गया कि अरे भई, अगर तुम मुक्ति का व्रत लेना चाहते हो तो बंधन का उत्सव देखना बन्द कर दो। ललित भई, समझ में आया। अगर मुक्ति का व्रत लेना पसन्द किया तुमने, पसंद तो करना चाहिए था बहुत जल्दी। अफसोस की बात है कि 60 बरस के ऊपर ही आ गए अब क्या करें। तो अब ही सही, 60 बरस की उम्र के बाद ही सही। अगर मुक्ति का व्रत लेना है आपको, तो बंधन के व्यवहारों को देखना, उसमें शामिल होना छोड़ दो। जरूरी है कि नहीं है? जरूरी है। तो मानव सेवा संघ अपने साधकों को यह नहीं कहता कि आपको विवाह शादी में शामिल होने के लिए हम नहीं जाने देंगे। स्वामी जी महाराज ने इसको बहुत घटिया किस्म का साधन माना, कि किसी के कहने से आप रुक जाए। बहुत घटिया किस्म का साधन है। अगर हम ऊपर से दबाब डालें कि आश्रम वासी लोगों को, साधकों को जो मुक्ति के पुरुषार्थ में लगे हुए हैं उनको गठबन्धन को देखने के लिए नहीं जाना चाहिए। तो मैं

कह दूँ कि नहीं जाना चाहिए, तो कई साधक हैं जो रुक जाएँगे, नहीं जाएँगे। लेकिन स्वामी जी ने ऐसा पसंद नहीं किया। नहीं भई, मेरे कहने से नहीं। तुम्हारे भीतर में इच्छा रह गई तो हमारे कहने से रुक भी जाओगे तब भी तुम्हारा उतना विकास नहीं होगा, जितना होना चाहिए। तो बात क्या है? तो बात यह है कि जो जीवन का सत्य है, जो आपके विकास के लिए आवश्यक है वह आपके सामने प्रस्तुत कर दिया गया। आपका विकास कब होगा, जब स्वेच्छा से आप इस बात को पसन्द करें कि हाँ यह मेरे लिए हितकारी बात है, यह मुझे मानना चाहिए। तो जब आप उसे मानना पसंद करेंगे तब वह आपके लिए हितकारी होगा।

तो सच्ची बातें जो हैं, आपके लिए जो हितकारी बातें हैं वे आपकी सेवा में निवेदन कर देना अपना काम है। अब कब समझ में आवेगा? जब समझ में आवे तब ही सही, अभी तो अभी ही सही। और अभी नहीं तो कभी सही। और भी अवसर ऐसे आते हैं कि मान लो आप जाते हैं गृहस्थी के रीति-रस्म में भाग लेने के लिए और बताते नहीं है। मत बताइए कोई बात नहीं। दूसरे-दूसरे दस काम है उसमें यह भी शामिल कर लिया, हो आए, कर आए। किसी ने जाना नहीं, किसी ने सुना नहीं, किसी को आकर बताया नहीं तो भी आपके भीतर यह राग रह गया है और किसी न किसी तरह से आप उसमें शामिल होना पसंद ही कर रहे हैं तो मानव सेवा संघ शासन नहीं करता कि आप क्यों गए, आप क्यों शामिल हुए। इससे कोई फायदा नहीं होने का है। आपके भीतर से ही यह चीज उपजनी चाहिए कि भई अब मुझे साधक होकर रहना है, अब मुझे जीवन-मुक्ति व भगवत्-भक्ति का पुरुषार्थ करना है तो अब जिस स्वीकृति को अस्वीकार कर चुके उसे पुनः स्वीकार नहीं करना है।

एक दिन था, एक क्षण ऐसा आया कि जब आपके अपने को गृहस्थ स्वीकार किया। और एक क्षण जीवन में ऐसा आया कि जब आपने अपने को गृहस्थी की स्वीकृति से अस्वीकार किया। तो अस्वीकृति के बाद भी

अगर उसी राग की पूर्ति करता है, तो दुनिया में कोई आपको राग-रहित बना नहीं सकता है। तो मानव संघ की एक यह विशेषता है कि हम जबरदस्ती नहीं करते। नहीं तो जबरदस्ती करने से क्या होता है, शासन करने से क्या होता है, कि बाहर-बाहर से आदमी का व्यवहार तो नियन्त्रित हो जाता है लेकिन भीतर से उसकी राग-निवृत्ति नहीं होती।

यहाँ तक कि मैं तो महाविद्यालय से आती थी स्वामीजी महाराज के पास। छात्रावास में रहती थी। सैकड़ों लड़कियों को लेकर के घंटी लगाकर जगाना, घंटी लगाकर सुलाना, घंटी पर भोजन, घंटी पर अध्ययन इस तरह का एक क्रम था। तो स्वामी जी महाराज के पास आकर जब मैं देखती कि सत्संग के समय कोई कहीं पर सो रहा है, तो हम धीरे-धीरे महाराज जी से पूछते कि महाराज जी एक आदमी उधर सो रहा है जगा दूँ? तो कहते कि नहीं-नहीं जगाओ मत, जगाओ मत।

सत्संग की अपेक्षा नींद उसको ज्यादा महत्त्वपूर्ण मालूम होती है तो उसको सोने दो, जगाने से कोई फायदा नहीं होगा। जगाने नहीं देते थे। जिसको नींद की अपेक्षा सत्संग अधिक महत्त्वपूर्ण मालूम हो तो उसको तो उस समय में नींद आएगी नहीं। घंटी भी बज रही है लोग-बाग सब आ भी रहे हैं, सभा हो रही है, बैठक हो रही है और कोई सो रहा है आराम से, तो जगाने नहीं देते थे। कितने विधि-विधान से साधकों के जीवन को सही क्रम पर चलाने का इन्तजाम इन्होंने किया लेकिन कहीं पर किसी जगह पर जोर नहीं डाला, तो एक यह विशेषता है। और महाराज जी ने इसको जाना, इसलिए उन्होंने यह नियम हम लोगों के सामने रखा। और इनमें दार्शनिक सत्य भी है। दार्शनिक सत्य क्या है? कि हम लोगों का जो यह अहं रूपी अणु है, जिसने सत्य को भी स्वीकार किया है फिर असत्य से सम्बन्ध भी रखा है। तो चाहते तो यह हैं कि दुःखरहित, देहातीत, अविनाशी जीवन के आनन्दमय अस्तित्व का भी अनुभव हो जाए,

और परम प्रेमास्पद प्रभु के अलौकिक प्रेम-रस को पा करके जन्म-जन्मान्तर के लिए सब प्रकार की तृष्णा शान्त हो जाए, अभाव मिट जाए, नीरसता मिट जाए और हम प्रेम स्वरूप होकर प्रेमास्पद से अभिन्न हो जाएँ। माँग तो यह है और इस माँग को रख करके हम लोग साधक भी बनते हैं, सत्संग भी आरम्भ करते हैं, साधन में भी लगते हैं और साथ-साथ नाशवान शरीरों से भी जुटे रहते हैं, शरीर के सम्बन्धियों से भी जुटे रहते हैं। तो ऐसी दशा में यह प्रारम्भ की बात है। जैसी-जैसी वर्तमान दशा अपने लोगों की है उसमें से आगे निकलने के लिए यह प्रणाली बहुत अच्छी है कि अकेले में बैठकर आत्म-निरीक्षण करो। पहला नियम है—निज विवेक के प्रकाश में आत्म-निरीक्षण करना, अपनी भूलों को देखना और दूसरा नियम है की हुई भूल को न दोहराने का व्रत लेना। तो बिल्कुल आरम्भ की बात है। तो कहा गया इस संसार में व्यक्तिगत किसी का कुछ नहीं है तो इसलिए किसी वस्तु को व्यक्तिगत मत मानो तो ममता के से नाश की सामर्थ्य आ जाएगी। और जो कुछ अपने को मिला हुआ है, वही मुझे अविनाशी जीवन देने में असमर्थ है, वही मुझे रसरूप जीवन देने में असमर्थ है तो जो मिला हुआ है वह ही मेरे काम का नहीं है तो जो नहीं मिला है उसकी कल्पना क्यों करना उसकी चाहना क्यों करना, उसकी कामना जीवन में क्यों रखना। यह हो गई विचार की बात। इस प्रकार से अध्ययन करके, जीवन को देख करके, विचार करके और फिर कामना-रहित होने का प्रयास करो। तो अहं के परिवर्तन की बात महाराज जी ने पहले कही और उन्होंने इसका जो स्वरूप बताया उसमें इतनी गुंजाइश है अपने को बदल डालने की कि जो भाई स्वयं अपनी धारणा को बदल देता है, जीवन के मूल्यांकन को बदल देता है, लक्ष्य को बदल देता है, ठीक कर लेता है, क्या कर रहे थे अब क्या करना है। क्या मान रहे थे, अब क्या मानना है। किसको हमने सत्य माना था और सही बात क्या है?

यह सब अपने द्वारा निश्चित कर लेने पर मन, चित्त, बुद्धि, इन्द्रियाँ सबमें परिवर्तन आता ही है। निजस्वरूप के सम्बन्ध में संत समागम वाले ग्रन्थ में यह बात कहीं लिखी हुई है, पृष्ठ संख्या इत्यादि मुझे याद नहीं है। लेकिन आपने पढ़ा होगा तो मिल बाजा का उदाहरण दिया है महाराज जी ने मनुष्य के अहं रूपी अणु को। क्या है भाई? कोई नहीं पहचानता है। बहुत प्रकार के वाद्य यन्त्र लोग लेकर बैठे हैं। उसमें एक आदमी एक टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ी का टुकड़ा लेकर बैठा है। सब लोग अपना-अपना यन्त्र बजा रहे हैं, तो वह भी अपनी लकड़ी पर हाथ फेर रहा है। पूछा गया कि भई तुम्हारे इस यन्त्र का नाम क्या है? तो उसने कहा इसका नाम है मिल बाजा। तो इससे स्वर कौन-सा निकलता है? तो अपना कुछ नहीं, सबके साथ मिल जाता है और जैसा जिसका स्वर हो वैसा मिल जाएगा। उदाहरण देने के लिए उन्होंने यह चीज ली और कहा कि हमारे अहं का भी यही हाल है।

अगर उसे देह के साथ मिला दो तो देह के जितने लक्षण है सब घटित हो जाते हैं। अभी हम बलिष्ठ है, अब दुर्बल हो गए अभी जी रहे हैं अभी मर जाएँगे। अभी बहुत दुखी हैं, अभी बहुत सुखी हैं तो शरीर के साथ सुर मिला दो तो सब लक्षण पर उस आरोपित हो जाते हैं, घटित हो जाते हैं और आदमी उसी के अनुसार सुख-दुःख का भोग करने लग जाता है। और उसी के अनुसार सुख-दुख अनुभव करने लग जाता है। और यदि इस बात को विवेक के प्रकाश में देख करके और अपनी ओर से असत् के संग का त्याग हमने कर लिया और जीवन के सत्य को स्वीकार करना उसकी स्वीकृति के आधार पर जीना आरम्भ किया तो सत्य की स्वीकृति के आधार पर उसी अहं में, जो यह कहता है कि हम बहुत सुखी हैं हम बहुत दुखी हैं, उसमें बड़ा परिवर्तन आ जाता है।

आपने संतों, भक्तों, महापुरुषों के जीवन में सुना होगा वे रोग, आपत्ति, विपत्ति—सबके सामने क्या कहते हैं मेरा न कभी जन्म हुआ न

कभी मृत्यु होगी। अब क्या हो गया? असत् के संग के त्याग से, सत्य की स्वीकृति से उसी अहम् रूपी अणु में विद्यमान अलौकिक और अविनाशी तत्त्वों की अभिव्यक्ति हो जाती है, तो एकदम परिवर्तन हो जाता है। तो भय नहीं है, दुःख नहीं है, अशांति नहीं है, मृत्यु नहीं है ऐसा हो जाता है। तो इसलिए उन्होंने मनष्य के विकास के लिए सत्संग पर बहुत जोर डाला कि पहले सत्संग करो। सत्संग के आधार पर जब असत् की स्वीकृति निकल जाएगी जब सत्य की स्वीकृति तुम्हारा जीवन बन जाएगी। तब उसके बाद कोई कठिनाई नहीं होगी।

इस एक विशेष बात पर ध्यान रखना और इसी आधार पर उन्होंने कहा कि दुनिया का कोई भी काम हम करते हैं तो उसका सफल होना, विफल होना विशेष अर्थ नहीं रखता है। सफलता की कोई गारंटी नहीं होती है, लेकिन मनुष्य के जीवन के साथ जीवनदाता प्रभु का बनाया हुआ मंगलमय विधान इतना बढ़िया है कि जिस समय से आप सत्य के जिज्ञासु बनते हैं अथवा भगवान के विश्वासी बनते हैं तो आस्था, श्रद्धा का पंथ पकड़ो अथवा विचार का पंथ पकड़ो किसी भी प्रकार से आपने सन्मार्ग पर चलना आरम्भ किया तो कभी मत सोचना कि आखिरी समय तक आप असफल रहेंगे। उस दिशा में असफलता नहीं होती है। जैसे-जैसे विचार बदलता जाता है, दोष मिटते जाते हैं। जैसे-जैसे आपकी जीवनी शक्ति आपके लक्ष्य के साथ जुट जाती है तो सत्य की अभिव्यक्ति हो जाती है। बड़ी बात जो मैंने सुन लिया, समझ लिया और साधन के क्रम में थोड़ा-थोड़ा अनुभव भी कर लिया तो सबसे बढ़िया बात क्या है हम लोगों के लिए? कि इस दिशा में पुरुषार्थ करने वाले साधक के लिए बहुत ही आशाजनक बात यह है कि जहाँ साधक अपनी ओर से ऐसा अनुभव करता है कि क्या बताएँ इन विकारों का नाश करना तो मेरे लिए बहुत कठिन हो गया। मैं काम, क्रोध, मोह लोभ को रखना नहीं चाहता हूँ। मेरे प्रयास से ये मुझ

में से निकलते नहीं हैं। तो जहाँ आप अपनी असमर्थता से अधीर होते हैं, वही पर करुणामय की करुणा का दरवाजा खुल जाता है।

स्वामी जी महाराज का अपना अनुभव था और उन्होंने मानव-जीवन के 'मंगलमय विधान' में इस बात की बहुत अच्छी चर्चा की। समय-समय पर हम साधकों को बड़ा ही आश्वासन दिया। यह कह करके कि डरने की घबराने की बात नहीं है। अपनी ओर से तुम बुराई करो मत और की हुई बुराई के परिणाम का नाश करने में अगर असमर्थ हो जाओगे तो डरने की कोई बात नहीं है। एक सामर्थ्यवान तुम्हारा रक्षक है, सहायक है और तुम उसे बुलाओ चाहे मत बुलाओ लेकिन जहाँ तुम हारते हुए अनुभव करोगे, वहाँ वह आकार के तुम्हें सँभाल लेगा, और तुम्हें पार लगा देगा। यह भी बहुत बड़ी बात है। हार होगी नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता।

आज के युग के ईश्वर-विश्वासी महात्मा गाँधी ने भी लिखा है कि सत्य के मार्ग पर चलते हुए आखिरी दम तक कोई गलत रास्ते नहीं गया। तो 'सत्य महाव्रत कथा' लिखा था उन्होंने। नमक के आन्दोलन में जेल में जब थे 1929–31 के बीच में, तो उसमें यह वाक्य लिखा है। उसी समय का मेरा पढ़ा हुआ याद रहता है, बहुत अच्छी लगती है यह बात। तो सत्य के मार्ग पर चलते हुए अन्तिम समय तक कोई गलत रास्ते नहीं गया। क्यों? क्योंकि जिस सत्य की आराधना में आप लगे है वह आप ही में विद्यमान है, सर्वज्ञ है, अर्न्तयामी है, आपको देख रहा है। बस अन्तर इतना है कि आपको पसंद क्या है? अगर निर्विकार होना पसंद है, किसी भी प्रकार से विकार युक्त दशा को आप सहन नहीं कर सकते हैं तो विकारों को मिटाने की सामर्थ्य आपमें है अथवा नहीं महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। कुछ इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। क्यों? क्योंकि सारी जिम्मेदारी अपने पर नहीं है। कोई है हमको सँभालने वाला। तो आप जितना कर सकते हैं, पूरी शक्ति लगा डालिए और जहाँ आपकी शक्ति खत्म हो जाएगी

तो असमर्थता की वेदना में आवश्यकता की पूर्ति स्वतः होती है। असमर्थता की वेदना में करुणामय के करुणा का दरवाजा खुलता है अर्थात् जहाँ जाकर हम रुक जाते हैं, वहाँ आकर के वे मिल लेते हैं। अनेक प्रकार से इसकी अभिव्यक्ति की गई है और अनुभवी जनों ने इस सत्य को जाना है। इस आधार पर वर्तमान में अपने सरीखे सभी भाई-बहनों से यह निवेदन कर रही हूँ कि जीवन के सत्य को सामने रखकर खूब आशा और विश्वास के साथ आप अपने पुरुषार्थ में लगे रहिए। जितनी शक्ति आपके पास बची-खुची है, ज्यादा तो खर्च ही हो गई है इधर-उधर में। इसके लिए तो कम ही बची है लेकिन कुछ परवाह नहीं जितनी बची हुई शक्ति है उसको इस दिशा में लगाइए और जहाँ आपके पास घट जाएगी वहाँ अनन्त सामर्थ्यवान हमारे साथ है। वे शक्ति भी देंगे, सामर्थ्य भी देंगे, प्रकाश भी देंगे, चलने की राह भी बताएँगे और समय-समय पर ऐसा मैंने अनुभव किया है कि हाथ पकड़ कर चला भी देते हैं, पार भी करा देते हैं। पथ भी देते हैं, पाथेय भी देते हैं, मंजिल पर पहुँचा भी देते है। इसलिए खूब निश्चिंतता से, निर्भयता से, आशा और विश्वास के साथ हम लोगों को चलते रहना चाहिए। अब शांत हो जाओ।

●

प्रवचन 13

स्वामी जी महाराज ने कहा कि भला काम करने से आदमी भला नहीं होता है। यही भ्रम है। भला काम करने के साथ-साथ बुराई भी जीवन में रहती है। तो भला काम करने से आदमी भला नहीं होता, भ्रम पूर्वक भी भलाई करता रहता है। लेकिन बुराई के छोड़ने से आदमी भला होता है। यह मानव सेवा संघ का सिद्धान्त है। तो कौन-सा सत्य स्वीकार करो? यह सत्य स्वीकार करो, अपने लिए व्रत स्वीकार करो कि हम प्राप्त सामर्थ्य का दुरुपयोग नहीं करेंगे।

दूसरी बात, निज विवेक का अनादर नहीं करेगे। यह व्रत जो है, यह तथ्य जो है मानव मात्र के लिए एक समान आवश्यक है। दुनिया का कोई भी मत हो, कोई भी मजहब हो, कोई भी सम्प्रदाय हो, कोई भी देश, युग हो आज के लिए नहीं पहले भी और आगे भी किसी युग का, किसी देश का, किसी मजहब का, किसी मत का, किसी सम्प्रदाय का व्यक्ति हो अगर वह निज विवेक का अनादर करता रहेगा तो उसका उद्धार नहीं होगा। और जिस किसी ने इस व्रत को ठान लिया कि हम निज विवेक का अनादर नहीं करेंगे, उसके जीवन में से असत्य निकल जाएगा। विवेक के प्रकाश में जो सही दिखाई देता है, वह करेंगे और जो सही नहीं मालूम होता है उसको नहीं करेंगे। तो इसमें से ज्ञान का बहुत बड़ा प्रभाव अपने जीवन पर आ जाएगा। जैसे कि निज विवेक के प्रकाश में क्या हम सब भाई-बहनों को यह नहीं दिखाई दे रहा हैं कि शरीर पहले जैसा था, आज नहीं है वैसा। दिखता है कि नहीं? तो उसमें से यह (Conculsion) निकलेगा, यह निष्कर्ष निकलेगा कि आज जैसा है आगे नहीं रहेगा। ठीक है? बहुत से शरीर जो मेरे सामने बड़े हृष्ट-पुष्ट थे आज नहीं है। तो जैसे शरीरों को बनते-बदलते हुए, बिगड़ते हुए, मिटते हुए हम लोग देखते है, उसी हिसाब से यह शरीर भी बन गया, बिगड़ रहा है, मिट जाएगा। निज विवेक का प्रकाश इस बात को बताता है कि नहीं?

एक बार एक साधक ने कहा कि भाई उधर से यह समाचार, यह संदेश आता रहता, तो हम शरीर के मोह में क्यों पड़ते। एक संत ने कहा कि चिट्ठियाँ तो बहुत बार आई आपके पास, आपने पढ़ा ही नहीं। कैसे? अरे भाई, दाँत एक टूट कर गिर गया यह समाचार नहीं आया कि शरीर भी गिर जाएगा। संवाद तो उधर से आता ही रहता है। समाचार भेजने वाले भेजते ही रहते हैं। आप सुनते ही कहाँ है? तो कौन-सा सत्य स्वीकार करो कि निज विवेक का अनादर नहीं करना है। दूसरी बात, निज विवेक का अनादर नहीं करना है।

और तीसरी बात क्या है? तो तीसरी बात यह है कि ईश्वर-विश्वास में विकल्प नहीं करना है। ईश्वर-विश्वास में विकल्प रखना है कि नहीं है, सुनते हैं कि नहीं सुनते है, मानते हैं कि नहीं मानते हैं, मुझे अपनाएँगे कि नहीं अपनाएँगे। क्या जाने किसी को मिलते हैं, कि नहीं मिलते हैं? आजतक किसी ने पाया है कि नहीं पाया है? तो इस प्रकार के जो अनेक संदेहात्मक धारणाएँ अपने जीवन में हैं उनको छोड़ देना पड़ेगा। तो तीन ही बातें हुईं। प्राप्त सामर्थ्य का दुरुपयोग नहीं करना, निज-विवेक का अनादर नहीं करना, प्रभु-विश्वास में विकल्प नहीं करना ये—तीन बातें ऐसी है कि दुनिया के किसी युग, किसी देश, किसी मजहब का व्यक्ति अगर मानेगा तो उसकी सफलता जरूर होगी। और ये बातें जो मानने की हैं ये मानने वाली बातें शरीर धर्म पर आधारित नहीं है।

यह हाथ-पाँव, आँख-कान का निर्णय नहीं है। यह निर्णय किसका है? यह निर्णय स्व का है। अपने द्वारा मैंने यह सत्य स्वीकार किया। अब इसको दूसरे शब्दों में कह दो और इनको किन-किन रूपों में हम कह सकते हैं जैसे ऐसे देखिए शरीर और संसार का अविभाज्य सम्बन्ध है, वह तो प्राकृतिक बात है न? वैज्ञानिक तथ्य है, तो जिन धातुओं से संसार बना है, उन्हीं धातुओं से शरीर बना है। तो शरीर और संसार का अविभाज्य

सम्बन्ध है। इस अविभाज्य सम्बन्ध को हम जब स्वीकार करेंगे, तो अर्थ क्या होगा? अर्थ उसका यह निकला कि एक शरीर की रक्षा और भरण-पोषण का जितना ख्याल मुझको है, उससे कम ख्याल अन्य शरीरों के लिए नहीं रहेगा। कम से कम इतना ख्याल हमको रखना पड़ेगा। तो यह सत्य की स्वीकृति का प्रभाव होगा कि आपके हृदय की संकीर्णता टूट जाएगी। दूसरी बात क्या है? जो भी कुछ सामग्री मिली है अपने को, सामर्थ्य मिली है अपने को, वह अपनी नहीं है, अपने लिए नहीं है इस सत्य को स्वीकार करना होता है। अपनी नहीं है क्यों नहीं है अपनी? कि जब तक चाहे तब तक नहीं रख सकते हैं, जैसा चाहे वैसा नहीं रख सकते। यह सब मिली हुई है, निजी नहीं है और अपने काम आने वाली नहीं है। क्यों? मेरे काम तो आएगी परमशांति, मेरे काम आने वाली बात है जीवन-मुक्ति, मेरे काम आने वाली बात है भगवत् भक्ति। तो संसार में कुछ ऐसा नहीं है जो मेरे काम आए। तो सभी साधकों के लिए विश्वास-पथ के, और विचार-पथ के और कर्म-पथ के जितने भी साधक होंगे अलग-अलग ढंग के सबके लिए आवश्यक बात होगी, कि वह शरीर और संसार से अपने को अलग स्वीकार करें। तो शरीर और संसार जो है वह अपना नहीं है और अपने काम नहीं आता है इस सत्य को स्वीकार करो। और मेरा नित्य सम्बन्ध केवल परमात्मा से है और किसी से मेरा नित्य सम्बन्ध नहीं है, यह सत्य सबके लिए समान रूप से आवश्यक है। तो मिली हुई वस्तु, सामर्थ्य इत्यादि मेरी नहीं है, मेरे लिए नहीं है। और मेरे लिए केवल परमात्मा है और उस परमात्मा का प्रेम ही मेरा जीवन है। इसमें से कोई भी वाक्य सत्य के रूप में स्वीकार कर लें, तो आपकी जीवन की समस्याएँ हल हो जाएँगी।

कई रूपों में महाराज जी ने कहा, सेवा करने के लिए सबको अपना मानो। यह भौतिक दर्शन का सत्य है। सुख लेने के लिए किसी को अपना

मत मानो यह अध्यात्म-दर्शन का सत्य है। प्रेमी होने के लिए परमात्मा को अपना मानो। यह आस्तिक दर्शन का सत्य है। तो भाई ने पूछा कि वह कौन-सा सत्य है जिसको स्वीकार करने मात्र से जीवन सफल हो जाता है। तो सेवा करने के लिए सभी को अपना मानो, यह भौतिक दर्शन का सत्य है। जब हम सभी को अपना नहीं मानते हैं तो भेद-भाव, ईर्ष्या-द्वेष, संघर्ष इत्यादि उत्पन्न होते हैं।

न मानना मनुष्य जीवन का कोई ध्येय ही नहीं है। अगर मानना है सत्य को तो भौतिक दर्शन के अनुसार सभी को अपना मानो सेवा करने के लिए। और शरीर और संसार की आसक्ति से मुक्त होना चाहते हो, देहातीत जीवन में प्रवेश करके सदा-सदा के लिए कृत-कृत्य होना चाहते हो, तो स्वयं सुख लेने के लिए इस शरीर को भी अपना न माना जाए, किसी को भी अपना न माना जाए। तो एक सत्य क्या है? सेवा करने के लिए सबको अपना मानो। दूसरा क्या है? सुख लेने के लिए किसी को अपना न मानो। तीसरी बात क्या है, प्रेमी होने के लिए केवल प्रभु को अपना मानो। जिसको जो अच्छा लगे, स्वीकार करो। तो इस स्वीकृति मात्र से जीवन बदलता है। तो सत्य को स्वीकार करना व्यक्ति का पुरुषार्थ है। और उस स्वीकृति के परिणाम से अहं का परिवर्तित हो जाना, यह मनुष्य के जीवन की महिमा है। अपने आप होता है। तो मानव सेवा संघ में मानव-जीवन का महत्त्व साधक भाई-बहनों के सामने रखने की बात है। आप अपने जीवन का महत्त्व जब स्वीकार करेंगे, तो सारी बातें आपके काम आएँगी।

अगर जीवन का महत्त्व स्वीकार नहीं करेंगे, तो सब ग्रन्थ और सब सन्त और सब उपदेश जहाँ के तहाँ ज्यों के त्यों रहेंगे क्योंकि यह जो सत्य का प्रकाश है, यह तो मिटेगा नहीं। लेकिन इन सबके होते हुए भी अपने भीतर अंधकार ही छाया रहेगा। अब कोई कहे यहाँ से इतनी ऊँचाई

पर बड़ा अच्छा भगवान जी का मंदिर है, उसमें भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन होता है, तो अगर कोई ऐसी बात कह दी जाए तो अब सब बैठकर अपना बल तोलेंगे कि देखें कि हम इतनी ऊँचाई पर चढ़ सकते हैं कि नहीं। तो जिसमें ऐसा विश्वास लगेगा कि हम तो चढ़ जाएँगे, तो वह तो दौड़कर चढ़ जाएगा। और जो ऐसा सोचेगा कि अरे भाई, हमको तो तकलीफ है, हमारे तो Heart में खराबी है तो हमसे तो पाँव से नहीं चला जाएगा। तो पहले ही से जो अपनी असमर्थतता स्वीकार करके बैठ जाएगा वह तो उठेगा ही नहीं। पहले ही से हार मान जाएगा।

मानव सेवा संघ के प्रणेता संत ने हम लोगों को यह प्रेरणा दी कि भाई मेरे, दुनिया की अन्य सभी बातों में तुम घोर पराधीन हो, तुम्हारी कोई स्वाधीनता नहीं हैं लेकिन सत्य से अभिन्न होने में कोई भी भाई, कोई भी बहन अनधिकारी नहीं है, असमर्थ नहीं है। निराश नहीं होना कभी भी। शरीर में बल नहीं है, तो कोई बात नहीं। क्यों? क्योंकि शरीर के बल से सत्य नहीं पकड़ा जाता। ठीक है न? जो शरीर के बल से पकड़ा जा सकेगा वह शरीर से घटिया होगा कि बढ़िया होगा? जो जीवन आपको चाहिए वह शरीर से बढ़िया चाहिए कि घटिया चाहिए? बढ़िया चाहिए। इसलिए जो जीवन आपको चाहिए वह शरीर के बल से पकड़ा नहीं जाएगा।

इसलिए शरीर दुर्बल हो गया, असमर्थ हो गया, invalid हो गया, कुछ भी हो गया, तो सत्य से अभिन्न होने में निराश नहीं होना है। क्यों? क्योंकि उसमें शरीर के बल की आवश्यकता ही नहीं है। तो सत्य को स्वीकार करो, जाने हुए असत्य का त्याग करो तो अहं में परिवर्तन आ गया। और वह परिवर्तन आ जाता है, तो धन की कमी, तन के बल की कमी, कुटुम्बी जनों की कमी, अच्छी परिस्थितियों की कमी, कोई अर्थ ही नहीं रखती है। इसका कोई प्रभाव ही अपने पर नहीं होता है। उदाहरण

मैंने आप लोगों को एक बार सुनाया था। चम्बल-तट पर स्वामी जी महाराज के पास एक साधक को लाया गया था भेंट कराने के लिए। बड़े आनन्द में थे वे साधक, बड़े आनन्द में थे। और उनके दोनों हाथ भी यहाँ से कटे हुए थे। दोनों पाँव भी कटे हुए थे। दोनों हाथ भी नहीं थे और दोनों पाँव भी नहीं थे और वे साधक बड़े आनन्द में थे। वह आनन्द कहाँ से आ गया? तो शरीर का मोह मिट गया तो आनन्द ही आनन्द है। सुख-भोग की आसक्ति छूट गई, तो आनन्द ही आनन्द है।

सन्त की वाणी में, भगवत् महिमा में विश्वास जम गया, तो आनन्द ही आनन्द है। हाथ पाँव का कट जाना कोई अर्थ ही नहीं रखता। स्वामी जी महाराज ने पूछा, समाचार पूछा, परिचय पूछा तो उन्होंने कहा कि गुरु महाराज ने कहा था चारों धाम का दर्शन कर आना। तो तीन धाम हो चुके हैं, अब बद्रिकाश्रम जा रहा हूँ। कैसे जाते हो भाई? कैसे यात्रा कर रहे हो? तो आपके पास जैसे आ गया, ऐसे ही करता हूँ। ट्रेन में बैठे हुए जा रहे थे और उधर से ट्रेन निकलती थी उसमें स्वामी जी महाराज के दूसरे संत जन, प्रेमी जन थे जो चम्बल तट पर गुफा पर जा रहे थे स्वामी जी से मिलने। तो इस मस्त आदमी को देखकर उनको आनन्द आ गया तो उन साथियों ने कहा यहाँ गुफा में एक बड़े अच्छे महात्मा रहते हैं बड़े ऊँचे महात्मा है तो आपको भेंट करने का मन हो तो ले चले। तो उन्होंने कहा ले चलो। तो किसी ने लाद करके ट्रेन पर से उतार लिया और किसी ने लाद कर गुफा में पहुँचा दिया। स्वामी जी के पास पहुँच गए तो खूब बातचीत हो गई, आनन्द हो गया। और प्रणाम कैसे करते हो और खाना कैसे खाते हो उसने बड़े मजे में स्वामी जी महाराज को सब बात बता दीं।

हमारे गुरु ने ऐसे कह दिया था। हम बड़े आनन्द में है घूम रहे हैं, हमको कोई तकलीफ नहीं है। तो शरीर-धर्म नहीं है शांति, मुक्ति, भक्ति। देहातीत जीवन की शांति, अमरत्व का आनन्द यह सब देहधर्म है ही नहीं

हैं, देह से इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अच्छा हो तो क्या, बीमार हो तो क्या और कमजोर हो तो क्या और कट गया तो क्या। और जब शरीर ही आवश्यक नहीं है उस अविनाशी जीवन के लिए, तो इस शरीर से दूर जो अन्य संगी-साथी दिखाई देते हैं उनकी जरूरत क्या पड़ेगी? और इस शरीर से दूर दूसरे सामान है, उनकी क्या जरूरत पड़ेगी? तो इन सब बातों की बिल्कुल ही आवश्यकता नहीं रहती है। सत्य की स्वीकृति मात्र से अपने में परिवर्तन होता है। और अपने में से असत्य के प्रति खिंचाव टूट गया तो उसके बाद आप और कुछ जानिए अथवा मत जानिए, मानिए अथवा मत मानिए। यह असत्य का पर्दा हट गया, विकार मिट गए तो जो सदा से है वह प्रकट हो ही जाता है। उसका आनन्द उसको आ ही जाता है। फिर और कुछ कहना-सुनना शेष नहीं रहता है। इसलिए मानव सेवा संघ के सिद्धान्त में सत्य की स्वीकृति पर बहुत जोर डाला गया। स्वामी जी महाराज ने बारम्बार इस बात को दोहराया है कि भई, जीवन में सफलता चाहते हो, तो जीवन के सत्य को स्वीकार करो।

मानव सेवा संघ कहता है कि उपर्युक्त सत्य की प्राप्ति में देश-काल की दूरी नहीं है, इसमें हमारे भाई-बहनों को संदेह नहीं होना चाहिए। सत्य की प्राप्ति में देश-काल की दूरी नहीं होती है। सभी अनुभवी संतों ने कहा है, ग्रन्थों में भी लिखा है। हम लोगों के लिए मानने की बात जो है वह यह है कि ऐसा सोच करके देखिए कि सत्य कहो और नित्य तत्त्व कहो और परमात्मा कहो एक है कि दो? एक ही है न। ज्ञान की दृष्टि से उसको सत्य कहते हैं और भक्तजन की दृष्टि से उसको भगवान् कहते हैं। तत्त्व तो एक ही है। तो महाराज जी का तर्क इतना बढ़िया है वह कहते हैं कि अगर आज तुम उस नित्य तत्त्व से, उस जीवन से देश-काल की दूरी मान लोगे, ऐसा मान लो कि आज वह मुझसे दूर है और कल वह मेरे नजदीक होगा मेरी साधना से, तो आज जो देश-काल की दूरी पर हो सकता है वह

किसी भी क्षण दूर हो सकता है फिर आगे भी दूर हो जाएगा तो क्या करोगे ? जी ! एक बात दूसरी बात सोचो कि हम लोग उसको कहते हैं, वह सर्वव्यापी है तो जो सर्वव्यायी है वह सब स्थान पर है अथवा नहीं। अगर उसको देश की दूरी पर मानोगे, स्थान की दूरी पर मानोगे तो उसका सर्वव्यापकता का विशेषण झूठा हो जाएगा। तो हम लोग ऐसा नहीं मान सकते हैं कि परमात्मा से किसी भी भगवान से किसी भी भक्त का देश-स्थान की दूरी है, मान सकेंगे ?

अगर ऐसा मानिएगा, कि मैं यहाँ हूँ और मेरे भगवान दूर हैं ऐसा मानिएगा तो, वह भगवान आपके काम नहीं आएँगे। जो आज दूर है वह कल फिर दूर हो जाएगा हम कहाँ तक बुलाएँगे। जो सत्य होता है, जो जीवन का तत्त्व होता है, जो भगवत् तत्त्व है वह कभी भी किसी स्थान पर अनुपस्थित नहीं होता। स्थान की बात हो गई अब काल की बात देखो कि आज तो परमात्मा मेरे से दूर है कल मैं प्रार्थना करूँगी तो मेरे नजदीक होगा। तो जिस परमात्मा के लिए हम लोग इस बात को मानते हैं कि वह सदैव है, सर्वकाल में है, ऐसा सबने माना है। केवल हिन्दू परम्परा में ईश्वर-वाद में यह बात नहीं है। दूसरे-दूसरे ईश्वरवादी मजहब के लोग जो है जैसे क्रिश्चियन लोग भी भगवान को मानते हैं इस्लाम में भी भगवान की सत्ता स्वीकार की जाती है। हिन्दू. मुसलमान, ईसाई तीनों ही बड़ी जातियाँ संसार की ऐसी है कि जिन्होंने भगवत्-सत्ता को स्वीकार किया है। और किसी से भी पूछ लो, किसी भी ग्रन्थ में पढ़ कर देखलो सब जगह यह बात कही गई है कि परमात्मा उसे नहीं कहते जिससे देश-काल की दूरी हो। परमात्मा उसको कहते हैं जो सर्वत्र है और सदैव है तो इस सिद्धान्त के अनुसार परमात्मा सदैव है, भूतकाल में था और वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा।

इसलिए मानव सेवा संघ में यह बात कही गई, कि सत्य की प्राप्ति में देश-काल की दूरी नहीं है। देश की दूरी मानकर सत्य का विशेषण

कट जाएगा, वह काम का नहीं रहेगा। काल की दूरी मान लो तब भी उसका विशेषण कट जाएगा, वह अपने काम का नहीं रहेगा। क्यों? क्योंकि जो आज दूर है वह आगे भी दूर हो जाएगा। जो आज भी यहाँ मौजूद नहीं है, वह आगे भी गैरहाजिर हो जाएगा। इसलिए जो जीवन का सत्य है, सत्य कहते ही है उसको जिससे देश-काल की दूरी नहीं होती है। तो जो सर्वत्र और सदैव विद्यमान है, ऐसे सत्य के अभिलाषी हम सभी भाई-बहन हैं। तो जिससे देश-काल की दूरी नहीं है, उससे अभिन्न होने में पराश्रय तथा परिश्रम क्या लगेगा? ऐसा सोचो। बड़ा अच्छा प्रश्न किया है जिज्ञासु भाई ने। मानव सेवा संघ का सिद्धान्त भी आपकी दृष्टि में स्पष्ट हो जाएगा और आपकी अपनी साधना में से भी संदेह निकल जाएगा।

परिश्रम और पराश्रय, दूसरे का, अन्य का सहारा लेना पराश्रय कहलाता है और बल लगाना परिश्रम कहलाता है। सत्य की अभिव्यक्ति में पराश्रय और परिश्रम नहीं है। और जब तक हम लोग पराश्रय और परिश्रम को पसंद कर रहे हैं, तब तक वह अत्यन्त निकट होते हुए भी अपने अनुभव में नहीं आ रहा है। यह बात समझ में आती है? पहला सत्य तो हम लोगों ने स्वीकार कर लिया कि उससे स्थान की दूरी भी नहीं है और काल की दूरी भी नहीं है। जिस समय हम बैठ करके उससे अभिन्न होने के उपायों की चर्चा कर रहे हैं, कि ऐसा करोगे, तो, भगवान मिलेंगे ऐसा करोगे तो भगवान मिलेंगे तो जिस समय हम लोग ये सब बातें कर रहे हैं उस समय भी भगवान हमारे भीतर-बाहर मौजूद हैं, कि नहीं है। सुन रहे हैं कि हम लोग उनके बारे में क्या-क्या बातें कर रहे हैं। उनको सब मालूम हो रहा है कि तो अब महाराज जी की वाणी दोहरा लो। वे कहते हैं जो नित्य विद्यमान है, जो सदा विद्यमान है, तुम्हारे ही में है और अभी इसी क्षण में विद्यमान है तो नित्य विद्यमान, नित्य सम्बन्धी को पुकारोगे और ढूँढने के लिए बाहर-बाहर जाओगे तो उसके निकट आओगे कि

उससे दूर हो जाओगे? जो अपने में विद्यमान है, इसी क्षण में प्राप्त है उसकी प्राप्ति के लिए अगर तुम परिश्रम करोगे तो परिश्रम करने के लिए शरीर की सहायता लेनी पड़ेगी। परिश्रम करने के लिए लेनी पड़ेगी न। जैसे कोई सोचे कि हम निर्जन स्थान में पैदल चलेंगे और खूब ढोल-मजीरा बजाकर परमात्मा को बुलाएँगे तो गाने-बजाने के लिए शरीर की सहायता लेनी पड़ेगी। और निर्जन स्थान पर जाने के लिए पाँव की सहायता लेनी पड़ेगी। स्थान की सहायता लेनी पड़ेगी। और जब जाएँगे तो ऐसा करेंगे तो काल का आश्रय लेना पड़ेगा। ठीक है न। तो स्थान और काल और शरीर और हाथ-पाँव और ढाल-मजीरा और ये स्वर यन्त्र Vocal organ जिसे गाने-बजाने का अंग कहते हैं, ये सब स्व है, कि पर है? पर है।

तो पर की सहायता से स्व से कैसे मिला जाएगा? जी! नहीं मिलेगा न। तो स्व में स्व है और उससे दूर होकर पराश्रम लिया जाता है। पराश्रय से उससे मिलना नहीं होता, जो अपने में है। और देखिए बड़ा रहस्य है मानव सेवा संघ के सिद्धान्त का। ये भाई कहते हैं, पराश्रय नहीं चाहिए यह बात तो ठीक हो गई न। अब परिश्रम नहीं चाहिए, यह भी देख लो। तो परिश्रम तो बिना पराश्रय के हो ही नहीं सकता। जब परिश्रम करना पड़ेगा तो परिश्रम के tools आपको लेने पड़ेंगे। कुछ प्राकृतिक हथियार है कुछ बनाया हुआ है। तो परिश्रम के लिए पराश्रय लेना पड़ता है। इसलिए पराश्रय कट गया तो परिश्रम भी कट गया। और सबसे भीतरी और सूक्ष्म बात क्या है? कि कर्म के रूप में, चिंतन के रूप में, स्थिति के रूप में कहीं भी मनुष्य के भीतर कुछ भी करने का संकल्प है, तो करने का संकल्प सूक्ष्म अति सूक्ष्म होने पर भी अहंकृति को जीवित रखता है।

हाथ पाँव मत हिलाइए। एकदम से शांत रहिए, चुपचाप बिल्कुल। बाहर से कुछ नहीं है, लेकिन भीतर में बहुत ही सूक्ष्म और शुभ संकल्प

है। क्या? कि हम मन की और चित्त की चंचलता को रोक देंगे और उस स्थिरता में अवस्थित होंगे। तो हम मन और चित्त की चंचलता को रोकेंगे, अगर यह संकल्प भीतर में बना हुआ है, तो अहंकृति नहीं रुकेगी। अहंकृति होती है न, शांति में से, स्थिरता में से एक गतिशीलता उदित होती है। तो जहाँ सूक्ष्म संकल्प मन के भीतर आ गया कि हम ऐसा करेंगे, इस संकल्प से अहंभाव भी जीवित रहेगा, अहंकृति भी होती रहेगी और अहं में इस संकल्प की पूर्ति की स्फूर्ति भी होती रहेगी। तो आपने सत्य से अभिन्न होने का अन्तिम कदम क्या सुना है? कि जहाँ सीमित अहंभाव का लोप हो जाता है, वहाँ असीम अनन्त से अभिन्नता हो जाती है। सुना है न? तो क्या हो गया?

सन्त कबीर ने कहा जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर-भीतर पानी, फूटा कुम्भ जल जल हि समाना इहि तत् कहिए ज्ञानी। कबीर बढ़िया भाषा बोलना नहीं जानते हैं। जल में कुम्भ माने मिट्टी का घड़ा तो उसको पानी में डुबा दो तो कहते हैं जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है। जल के भीतर घड़ा है और घड़े के भीतर पानी है। तो बाहर भी पानी है भीतर भी पानी है। जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी। फूटा कुम्भ जल जल हि समाना इहि तत् कहिए ज्ञानी। तो मानव सेवा संघ ने सलाह क्या दी? सलाह यह दी कि पहला काम क्या करो कि अहं की अशुद्धि मिटाने का उपाय करो।

अशुद्धि कैसे मिटेगी? भाव की शुद्धि, विचार की शुद्धि, कर्म की शुद्धि, पहले इसका उपाय करो और अशुद्धि का नाश करो। तो अशुद्धि का नाश कैसे होगा? तो पहले जिन तीन सत्यों को सामने रखा गया, उन व्रतों को धारण करो। प्राप्त बल का दुरुपयोग नहीं करेंगे, निज विवेक का अनादर नहीं करेंगे, ईश्वर-विश्वास में विकल्प नहीं करेंगे। इन बातों को मान लीजिए तो अहं की अशुद्धि का नाश हो गया। तो क्या रह गया?

तो बल का सदुपयोग रह गया, विवेक का आदर रह गया और ईश्वर-विश्वास रह गया। तीन अच्छी बातें रह गईं, रहने वाली बातें रह गईं। तो पहले असत् के त्याग से अहं शुद्ध होता है फिर उस शुद्ध अहं में साधन-तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है, शांति आती है, स्थिरता आती है। तो जब साधन-तत्त्व की अभिव्यक्ति होने लग जाए तो इनके फल का भी भोग मत करना, योग का भोग मत करना। तो बुराई का त्याग कर दिया आपने तो आप भले हो गए और भलाई के अभिमान को भी छोड़ दिया तो अहं के लोप की तैयारी हो गई। और फिर जो अपने ही में विद्यमान है, नित्य निरन्तर विद्यमान है, मेरा परम हितैषी है, मुझे जो खूब प्यार करने वाला है, मुझको सब प्रकार से सँभालने वाला है, ऐसा जो मेरा अपना है, अपने ही में विद्यमान है, उसकी आनन्ददायिनी विभूतियाँ अपने में प्रकट होने लगती है। अशुद्धि का नाश होने पर फिर क्या होता है? वह आनन्द बढ़ने लगता है, बढ़ने लगता है बढ़ने लगता है। उसमें कहीं भी कोई बाधा कोई रुकावट नहीं, कुछ नहीं। वह अपने आप से प्रस्फुटित होने वाला है। जैसे फूल की कली खिल जाए तो सुगन्धि ऐसे ही वायुमण्डल में फैल जाती है। उसी प्रकार, मैंने अपने जाने हुए असत् का त्याग कर दिया तो मेरे भीतर जो नित्य तत्त्व विद्यमान है, उसकी विभूतियाँ स्वतः ही प्रकट होने लगती हैं, अभिव्यक्त होने लगती हैं, अब वहाँ जाकर के बड़ा भारी खतरा होता है साधक के लिए कि जब उसके भीतर से शांति आती है तो उसको भासित होने लगता है कि क्या बताएँ, सब लोग जो बैठे हुए हैं वे तो अशांति में दिन काट रहे हैं, मैं तो परम शान्त हूँ। तो शांति तो नित्य तत्त्व है उसका नाश कभी नहीं होगा उसके चारों ओर 'मैं' का घेरा लग गया। गलती समझ में आ रही है? ये सब लोग तो रूखे-सूखे क्रियात्मक ढोल मजीरा बजाते रहते हैं, मैं तो प्रभु का बड़ा प्रेमी हूँ। मैं तो यह सब कुछ नहीं करता हूँ, मेरे हृदय में तो उनका प्रेम भरा रहता है। तो प्रेम तो

अविनाशी तत्त्व है और सचमुच आ रहा है उन्हीं की ओर से। दिया है उन्होंने मेरे कल्याण के लिए, जन्म जन्मातर के भोग से, कामनाओं से, तृष्णाओं से जले हुए हृदय को, शांत, शीतल, सरस बनाने के लिए परम कृपालु ने बरसा दिया लेकिन मैंने क्या किया? मैंने 'मैं' का घेरा लगा दिया। मैं बड़ा भक्त हूँ, तो डूब गया।

मानव सेवा संघ ने सभी भाई-बहनों को सलाह दी कि भैया सत्य से अभिन्न होने में परिश्रम और पराश्रय मत रखना। अगर परिश्रम-पराश्रय की बात रखोगे तब भी सत्य से दूरी हो जाएगी, क्योंकि वह स्व में ही विद्यमान है। और परिश्रम की बात रखोगे तब भी स्व से दूरी हो जाएगी क्योंकि परिश्रम जब कभी होगा, तो अहंकार बुलन्द हो जाएगा। मुझे ऐसा करना है, मैंने ऐसा किया है। तो जहाँ मैं, मैं, मैं, यह अहं भाव जहाँ जिंदा है और साधना के फल पर। बुराई से तो अहं का शृंगार कोई नहीं करता है। स्वामी जी महाराज कहते कि समाज में कहीं भी साइन बोर्ड नहीं देखोगे कि यहाँ पर घूसखोरी सिखाई जाती है। यहाँ पर Black marketing की training होती है। ऐसा साइन-बोर्ड कहीं देखा है। नहीं देखा, तो बुराई का समर्थन कोई नहीं करता है। मैं बुरा हूँ, यह declaration कोई नहीं देता है। लेकिन भलाई के बल पर हम सत्य से दूर हो जाते हैं। अच्छाई के बल पर अहंभाव का पोषण होता रहता है। इसलिए परिश्रम बंद किया। और अंतिम बात क्या है? लग जाए थोड़ा ज्यादा समय, शांति से बैठे रहिए।

अंतिम बात क्या है, बड़ी अच्छी है, बड़ी अच्छी है और वह क्या है, कि मैंने अनुभवी संत के मुख से सुना और उनकी कृपा से, जीवन के मंगलमय विधान से किसी-किसी अद्भुत घड़ी में इस रहस्य का दर्शन पाया। वह रहस्य क्या है? कि साधक के भीतर एक लगन है किस बात की? कैसे भी हो, करने वाले चाहे जिस तरह से करें हमारे भीतर के सब

विकार मिट जाने चाहिएँ, हमारे और उनके बीच में जो दूरी मालूम होती है, प्रतीत होती है, है नहीं, प्रतीत होती है, वह मिट जानी चाहिए। किसी भी प्रकार यह जीवन पूर्ण हो जाना चाहिए तो ऐसी आवश्यकता जब जगती है साधक में तो पुरुषार्थी साधक क्या करते हैं? समर्थ साधक जो होते हैं वे क्या करते हैं? कि उनको जो जो सूझता है कि ऐसा करने से अच्छा होगा, ऐसा करने से अच्छा होगा सो सब कर डालते हैं वे जल्दी-जल्दी। सब करने के बाद क्या होता है? कि उनको अपने से इस बात का सत्य पता चल जाता है, कि ऐसा करने से मेरा काम बना। करने से तो बनता ही नहीं है। करते रहोगे तब तक तो सत्य की दूरी रहेगी ही। तो उनको पता चल जाता है। और मेरा ऐसा विश्वास है कि हमारा-आपका सबका जो परम हितैषी है न जो प्रतीक्षा कर रहा है कि मेरे बच्चे कब संसार के बंधन से मुक्त हो करके, हमारे दिए हुए ज्ञान और प्रेम का आनन्द लेंगे इसकी प्रतीक्षा है उसमें, तो ऐसा जो है न वह हमारे हर गलत कदम पर भीतर से ही अपने को सुझाव देता रहता है।

ऐसे काम नहीं बना, ऐसे काम नहीं बना तो क्या स्वामी जी महाराज ने कहा कि साधक के जीवन में एक बड़ी शुभ घड़ी आती है। कौन-सी घड़ी? कि करणीय कुछ शेष रहा नहीं जितना बल चला, जितनी बुद्धि चली, जितनी धन-सम्पत्ति लगा सके सब करके देख लिया। अब करने लायक कुछ बाकी नहीं है, तो अब करने का प्रश्न खत्म हो गया न। तो अब चित्त-वृत्ति शांत होने लगती है। साधक को इस बात का पता नहीं चलता लेकिन अनुभवी जन जानते हैं कि जब वह हार जाता है न, मेरे किए तो कुछ हुआ नहीं और करने के लायक कुछ रहा नहीं तो जहाँ करना बन्द हो गया तो उसकी अंहकृत्ति शांत होने लगती है, अहं भाव उसका गलने लगता है। क्या करें मेरे किए कुछ हुआ नहीं और अब उन परम हितैषी, परम प्रेमी, परम कृपालु से मिले बिना तो किसी तरह रहा जाता

नहीं। तो अपने परिश्रम और पराश्रय का त्याग और उस ओर का जबरदस्त खिंचाव, पहले दिन बात हुई थी न, बड़ा आकर्षण है उसमें, बड़े जोर से खींचते हैं वे अपनी ओर। महाराज जी ने एक जगह लिखा है कि शरण्य की कृपा दृष्टि जब शरणागत पर पड़ती है और उसको वे अपनी ओर खींचने लगते हैं तो उनका आकर्षण इतना मधुर इतना जोरदार होता है कि शरणागत उससे न हटने के लिए बाध्य हो जाता है। रहा ही नहीं जाता एकदम। इतनी जोर से खिंचाव मालूम होता है।

तो अन्तिम बात क्या हो गई? अपना बल, अपना पुरुषार्थ शांत हो गया। अब हमें कुछ नहीं करना है और तब भी उनसे दूरी है वह सही नहीं जाती है। अब हम नहीं रह सकते तुमसे मिले बिना तो उधर का उतना जोरदार आकर्षण उसको छू देता है। प्रभु की आनन्दमय विभूतियाँ, ज्ञान का प्रकाश भी बड़ा सरस होता है। प्रेम का रस तो सरस होता ही है। यह विभूतियाँ जब साधक को छू देती है तो वह अपने आप को भूल जाता है। अपने आप को जब भूल गया तो सीमित अहंभाव समर्पित हो गया तो असीम से, अनन्त से अभिन्नता हो गई। यह आखिरी कदम है। यहाँ पहुँचकर भक्त जनों ने भक्ति के प्रवाह में अपने-पन के खोने का बड़ा सुन्दर वर्णन दिया है। बहुत सुन्दर वर्णन किया है। "लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल, लाली देखन में गई मैं भी हो गई लाल", जब हम है तब हरि नहीं, अब हरि है हम नाहिं, प्रेम गली अति साँकरी तामें दोऊ न समाहिं।

●

प्रवचन 14

उपस्थित महानुभाव, सत्संग-प्रेमी माताओ, बहनो और भाइयो !

संत वाणी में अभी हम लोगों ने प्रश्न भी सुना और उत्तर भी। प्रश्न क्या किया गया था उनसे कि पथ-प्रदर्शन कीजिए, मार्गदर्शन कीजिए अथवा जीवन की राह दिखलाइए। तो स्वामी जी महाराज ने उत्तर दिया कि चलने की रुचि में मार्ग दिखाई देता है अर्थात् जो वास्तविक जीवन की ओर आगे बढ़ना चाहता है, आगे बढ़ने की आवश्यकता अनुभव करता है, उसे स्वत: ही राह दिखाई देती है ऐसा उत्तर स्वामी जी महाराज ने दिया। स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त जी ने प्रश्न किया था, महाराज जी ने उत्तर दिया। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा कि चलने की रुचि है और मार्ग दिखाई देता है, चल नहीं पाते। तो ऐसी दशा हम सब भाई-बहनों में से बहुतों की है। शांति, मुक्ति, भक्ति की ओर आगे बढ़ने की आवश्यकता अपने को है कि नहीं है? जी है। और कैसे आगे बढ़ेगे? उपाय मालूम है कि नहीं? जी। उपाय भी मालूम है, 'हाँ' कहने में कोई संकोच की बात नहीं है।

हम लोगों में से किसी से भी पूछा जाए कि भाई, शांति कैसे मिलेगी तो बहुत सहज से हम कह सकेंगे कि कामनाओं के त्याग से शांति मिलती है। कामनाओं के त्याग से शांति मिलती है, यह बात हमें मालूम है कि नहीं है? मालूम है। तो स्वामी जी महाराज के सामने यह प्रश्न रखा गया कि चलने की आवश्यकता भी है और राह भी दिखाई देती है, पर चल नहीं पाते हैं, चला नहीं जाता है। ऐसे हम लोग कहते हैं। क्या करें, बुराइयों का त्याग कर देना चाहिए ऐसा तो हम जानते हैं, पर मेरे से बुराइयों को छोड़ा नहीं जाता है। तो ऐसे ही वहाँ भी कह दिया लोगों ने क्या बताएँ। आवश्यकता भी है, मार्ग भी दिखाई देता है और चला नहीं जाता है, चल

नहीं पाते हैं। तो स्वामी जी महाराज ने उत्तर दिया कि न चल सकने की वेदना में चलने की शक्ति आ जाती है। यह भी बहुत अच्छी बात है न चल सकने की वेदना में। क्या बताएँ? बुराई जीवन में दिखाई देती है और देखकर बहुत ही कष्ट होता है अपने को और मैं तो सब प्रकार से बुराई-रहित होना चाहती हूँ परन्तु हमसे बुराई छोड़ी नहीं जाती। तो बुराई रहित न होने का जो कष्ट होता है, उस कष्ट से बुराई-रहित होने की शक्ति आ जाती है।

इसी बात को प्रायः प्रत्येक समारोह के समय कई प्रकार की शब्दावलियों में हम लोग प्रकट करते रहते हैं। सुनते रहते हैं, निवेदन करते रहते हैं। बात यह बिल्कुल सही है और ऐसा क्या सम्भव है? ऐसा कैसे हो सकता है? तो इसके सम्बन्ध में मनुष्य के जीवन पर विचार करने से, सन्त की वाणी को सुनने से यह मालूम हो गया कि कोई भी मनुष्य जब पतन के रास्ते को छोड़कर उन्नति की ओर आगे बढ़ना चाहता है और उसमें अपने को असमर्थ पा करके असमर्थता की पीड़ा से पीड़ित होता है तो उन्नति की और जाने वाले की पीड़ा सर्व समर्थ प्रभु से सही नहीं जाती। ऐसा होता है। वे नहीं सह सकते। तो क्या होता है?

उनके पास तो अनन्त सामर्थ्य है। जितना चाहिए, उतना दे देते हैं। जितना बल लेकर आप आगे बढ़ सकेंगे, उतना बल परमात्मा दे देते हैं। उनके पास सामर्थ्य की कमी भी नहीं है और उनके पास उदारता की भी कमी नहीं है। देने में भी कभी कंजूसी नहीं करते, हिसाब नहीं करते। जितना जिस साधक को चाहिए, बिना माँगे बड़ी उदारता से अनन्त परमात्मा दे दिया करते हैं। इसी बात को महाराज जी ने हमको इन शब्दों में कहा, कि भई चलने की आवश्यकता महसूस करो तो राह दिखाई दे जाएगी। और राह पर चलने की असमर्थतता है, तो उस असमर्थता से पीड़ित हो जाओगे कि मैं क्या बताऊँ, सत्य का रास्ता दिख तो रहा है परन्तु मेरे

कदम आगे नहीं बढ़ रहे हैं। तो इस बात की बड़ी पीड़ा हो जाए, उससे सामर्थ्य की वृद्धि हो जाती है। यह मानव-जीवन का मंगलमय विधान है। यह मानव-जीवन के मंगलकारी रचयिता की मंगलकारिता है कि उन्नति के पथ पर जाने वाले किसी को परमात्मा असमर्थ छोड़ नहीं देते हैं, उसे अपनी ओर से बिना माँगे सामर्थ्य देते हैं और उसे आगे बढ़ाते हैं।

कई बार तो मुझे ऐसा लगा कि सामर्थ्य दे करके साधक को आगे बढ़ा देते हैं और कई बार मुझे ऐसा लगा कि स्वयं ही उसकी समस्या का समाधान कर देते हैं, अपने आप ही कर देते हैं। बल मिल गया और मैंने कर लिया ऐसा भी होता है। असमर्थता से व्याकुल हूँ और सामर्थ्यवान ने हमारा संकट दूर कर दिया ऐसा भी होता है। दोनों तरह की बातें होती है। हमेशा साधक के जीवन में इस बात का बहुत ही दृढ़ निश्चय अपने में रहना चाहिए कि साधना के पथ पर किसी भी स्तर पर जा करके यदि हमें असमर्थता की पीड़ा होगी तो सामर्थ्यवान हमेशा ही मदद दे करके पार लगा देते हैं। बीच रास्ते में कोई नहीं रहता है।

महात्मा गाँधी आज के युग के बड़े अच्छे साधक थे। उन्होंने अपने जीवन को साधना में साधा और अपने अनुभव के आधार पर एक ग्रन्थ में लिखा है। बहुत छोटी-सी किताब है। 1929-30 में जब नमक का आन्दोलन आरम्भ हुआ था जब वे जेल में थे तो प्रत्येक मंगलवार को एक संदेश देश वासियों को व आश्रम वासियों को भेजते थे तो वह सारा 'मंगलप्रभात' के नाम से एक छोटी-सी किताब है, उसमें साधना के एक-एक खण्ड को ले करके उन्होंने बहुत ही practical विवेचन उसमें लिखा है। तो उसी में एक जगह पर लिखा है कि सत्य के मार्ग पर चलते हुए कोई भी साधक अन्त काल तक गलत रास्ते नहीं गया।

ऐसा उन्होंने लिखा है कि सत्य के मार्ग पर चलने वाला कोई भी साधक अन्त समय तक गलत रास्ते नहीं गया। जरा सी गलती हुई कि

ठोकर लगती है, चेतना आती है और साधक सही रास्ते पर आ जाता है। यह भी उसी तरह की चीज है कि हमको किसी प्रकार का भ्रम रह गया है, किसी प्रकार की असमर्थतता रह गई है, अपने को पता नहीं चल रहा है। वह जो नित्य निरन्तर विद्यमान रहने वाला सत्य हर एक साधक के भीतर सब समय विद्यमान है वह देखता रहता है, कि हम लोगों की दशा क्या हो रही है। हम क्या सोच रहे हैं हम क्या कर रहे हैं? हम कैसे चल रहे हैं? हम कहाँ पीछे हट रहे हैं? इस बात का पूरा-पूरा ज्ञान उन परमात्मा को रहता है। और वे सब समय साधक के जीवन को आगे बढ़ाने में सचेष्ट रहते हैं।

हमेशा इसलिए हम सब भाई-बहनों को इस बात में बहुत निश्चिन्त रहना चाहिए कि मेरी सामर्थ्य घट जाएगी, तब भी मैं बीच रास्ते में नहीं रहूँगा। बहुत बढ़िया बात है। अगर अपनी ही पूँजी से काम चलाना हो तो आदमी सोचे कि मेरे पास कितनी है और जितना घटेगा उतनी उदार दाता सब समय देने के लिए तैयार है। तो फिर क्या चिन्ता है, कोई चिन्ता की बात नहीं। अवश्य ही बेड़ा पार होगा, ऐसा निश्चय ले करके साधन के पथ पर आगे बढ़ना चाहिए। अपनी दुर्बलता को देख करके हिचकना नहीं चाहिए कि क्या बताएँ, हममें तो दम ही नहीं है। हम कैसे बढ़े, सो नहीं करना चाहिए।

अब देखिए कि असफलता और असमर्थता की पीड़ा भी हम लोगों को मँहगी पड़ जाए, ऐसा भी तो होता है। सफलता मिली भी नहीं और असफलता की गहरी वेदना भी नहीं। ठीक है? सत्संग में बैठते तो हैं ही, कमाई का कुछ हिस्सा दान में लगा दिया, शरीर का कुछ बल समाज की सेवा में लगा दिया। अच्छी तरह से दिन कट रहे हैं सत्य से अभिन्नता नहीं हुई तो कोई बात नहीं है। परमात्मा से भेंट-मुलाकात नहीं हुई तो कोई बात नहीं है। देखा जाएगा आगे कभी कर लेंगे इसका अर्थ क्या है?

इसका अर्थ यह है कि सत्संगी होते हुए भी, किसी न किसी रूप में साधन करते हुए भी, अपने लोगों में साध्य से अभिन्न होने की तीव्र लगन नहीं है। यह अर्थ निकला।

एक घटना जैसे मैं आप लोगों को सुनाया करती हूँ कभी-कभी। तो अपने लोगों को सत्य की ओर आगे बढ़ने में अथवा चिन्ता तथा भय से मुक्त होने में, सर्वांश में मुक्त होने में अगर देर लगती है तो देर जो लग रही है, उसको हम लोग सहन क्यों कर रहे हैं? ऐसा सोचकर के देखो। अगर सहन नहीं होता हर तरह से, आदमी अधीर हो उठता है। परमात्मा से मिले बिना किसी प्रकार से रहा नहीं जाता, तो इस प्रकार की अधीरता भी अपने को मँहगी पड़ गई है कि अधीरता भी नहीं आई।

स्वामी जी महाराज सुनाया करते थे कि तीव्र प्यास लगी है और हाथ में भरा हुआ जल भी है और जब सत्य से अभिन्न होने की तीव्र आवश्यकता जाग्रत होती है, तो पानी पिया नहीं जाता। हाथ में जल है और प्यास से कंठ सूख रहा है लेकिन साधक पानी को पी नहीं पाता है। क्या लगता है उसको? प्रभु से मिलेंगे पहले और जल पिएँगे पीछे। तो इसको वे सिद्धान्त के रूप में कहते थे लेकिन थी उनके जीवन की बात। कभी-कभी व्यक्तिगत सत्संग के सिलसिले में उन्होंने कह दिया कि मुझे तो ऐसा लगता था कि 1-2 मिनट का समय मैंने जल पीने में लगा दिया, तो जल पीते-पीते प्राण पखेरू उड़ गए तो? परमात्मा से मिलने का प्रोग्राम तो बाकी रह जाएगा।

इसलिए प्यास लगी है और हाथ में जल है और पीते नहीं थे, पकड़े बैठे रहते थे। और भीतर में गहरी व्याकुलता रह-रहकर उमड़ रही है। क्या? कि पहले मिलना जरूरी है। पहले प्रभु से मिलें, पीछे जल पिए तो ऐसा होता है साधकों के जीवन में। इस तरह का एक point आता है, जबकि करणीय कुछ भी शेष नहीं है अपने को। जो करना था मैंने सब

कर लिया। अब सब प्रयास, अप्रयास में विलीन हो गए। फिर भी अगर उनसे, परमात्मा से अभिन्न होने का आनन्द नहीं आया तो साधक तड़प उठता है कि अब तक हम किसी प्रकार आपसे मिले बिना रह ही नहीं सकते हैं। जब ऐसी उसकी लगन लग जाती है, ऐसी धुन लग जाती है तो कब उसकी लगन तीव्र हुई और कब उसको प्रभु-मिलन का आनन्द आया, यह पता नहीं चलता। तत्काल ऐसे अद्‌भुत अनुभव साधकों को होते हैं कि जिनके सम्बन्ध में कुछ भी कहना, सुनना, वर्णन करना सम्भव नहीं है। ऐसे अद्‌भुत अनुभव साधकों को होते हैं। जिन साधकों ने परमात्मा को मान करके अपनी साधना आरम्भ की, वे तो पुकारते ही रहते हैं। और महाराज जी की गीता-भवन की चर्चा है। वहाँ इस तरह की बातें बहुत होती थीं तो महाराज जी कभी-कभी कहते, देखो भाई प्यास लगी है और जल नहीं मिल रहा है। जल न मिलने के कारण प्यासा आदमी भीतर से पानी की आवश्यकता बंद कर देगा? जी! बंद तो नहीं करेगा। हाय पानी, हाय पानी अगर मुँह से नहीं बोलेगा, तो भीतर-भीतर जल का अभाव अनुभव करेगा।

राजस्थान में जैन सम्प्रदाय में एक प्रथा है कि शरीर छोड़ने के लिए ये लोग व्रत ले लेते है। क्या कहलाता है वह व्रत? सन्थारा। सन्थारा व्रत ले लेते हैं। क्या व्रत ले लेते है उसमें? कि अन्न, जल अब ग्रहण नहीं करेंगे। तो संख्या भी होती है कोई 3 कोई 4 और कोई 5 दिन। वे लोग बता रहे थे, तो सन्थारा किया हुआ एक आदमी जिसने सोच लिया था कि अब शरीर को त्याग कर ही देना ही चाहिए, अन्न जल नहीं लेना चाहिए। तो जैन सम्प्रदाय में सन्थारा लेकर शरीर त्याग करने वाले की बड़ी महिमा है। बहुत प्रकार की उनके यहाँ प्रथा है, जिससे व्यक्ति को इस प्रकार के तप करने में बड़ा प्रोत्साहन मिलता है। ऐसा खूब मैंने देखा है वहाँ। तो एक सज्जन ने लिया था सन्थारा और कई दिन बीत गए। अब

जब उनको बड़ी गहरी प्यास लगी जल की तो वे पुकारने लगे, जल चाहिए, जल चाहिए। तो लोग मुझको बता रहे थे कि उनके सगे-सम्बन्धी, हितैषी मित्र, परिचित, साधु-संत सब मिलकर के चेष्टा यही करते हैं कि इस आदमी ने व्रत लिया तो इसको जल न दिया जाए। ऐसी चेष्टा करते हैं तो देते नहीं है। समझाते रहेंगे उसको और समय काटते रहेंगे और चाहेंगे कि इस आदमी ने सन्थारा लिया है तो बिना जल लिए इसके शरीर का अन्त हो ही जाना चाहिए।

इसी प्रकार की मदद कुटुम्बी जन भी करते हैं। मित्र भी करते हैं और उनके संगी-साथी जो भी हों, वे करते हैं। तो लोग मुझे बता रहे थे। तुरन्त ही उनका देहान्त हुआ था, शायद एक दो दिन ही बीते थे तब मैं वहाँ पहुँची थी और मौहल्ले में बड़ी चर्चा थी इस बात की। तो महिलाएँ मुझसे कहने लगी कि वे पानी-पानी पुकारते रहे लेकिन उन्हें दिया नहीं गया। तो जो भी उससे मिलने जाए उनको धीरज देने के लिए अथवा व्रत पर दृढ़ रहने की बात याद दिलाने के लिए जो भी कोई जाए तो उनको देखे और देखते ही पानी की इतनी तीव्र आवश्यकता उनके भीतर थी कि वे कहने लग जाएँ कि भाई जी, आपके घर तो जल की धारा बह रही है जल की नदी बह रही है, उसमें बहुत जल है, जल ही जल है क्या मतलब है? कि आवश्यकता इतनी जबरदस्त थी कि उनके मस्तिष्क के मानसिक स्तर पर जल ही जल दिख रहा था और दूसरी बात वे करते ही नहीं थे। जल है आपके घर के सामने तो गंगा बह रही है, आपके घर के सामने तो जल का समुद्र लहरा रहा है। उसमें बहुत जल है, उसमें बहुत जल है हाय मुझ को जल चाहिए। बड़ा दुःख लगा मुझे। दिल में बड़ा धक्का लगा लेकिन हमने कुछ कहा नहीं। हमने कहा कि भाई अपने मजहब की बात है, जिसका हो सो हो। अभी मुझे याद आ गया मैं आपको इसलिए सुना रही हूँ। तो स्वामी जी महाराज हमें कहा करते थे कि तुम्हारे में अगर सब

अपने से करने की सामर्थ्य नहीं है, तो जीवन में से जिन बुराइयों को मिटा देना चाहते हो, उन बुराइयों के रहते हुए तुम्हें चैन कैसे है? जी! एक बात हो गई न।

दूसरी बात क्या कहते कि जिस परमात्मा से मिलने की आवश्यकता है तुमको, उसके बिना तुमसे रहा कैसे जाता है? और तब यह बात कहते कि लगन तो ऐसी लगती है कि मान लो कि प्यासा आदमी तड़प रहा है प्यास से और उसको चारों ओर से निराश कर दिया जाए। यहाँ कही भी जल नहीं है, आपको मिलेगा नहीं तो यह कह देने के बाद भी उसके भीतर से पानी का चिन्तन मिटेगा? नहीं मिटेगा। फिर और कहते, मान लो कि उसके सामने आप हथियार लेकर चले जाओ और जा करके कहो कि खबरदार जो पानी का नाम लिया अगर पानी का नाम लोगे तो गोली से उड़ा देगे। तो इस भय के देने के बाद भी वह हाय पानी कहना बन्द कर सकेगा? नहीं कर सकेगा। क्यों?

क्योंकि वह उसकी आवश्यकता है। तो ऐसे ही होता है। सत्य की अभिव्यक्ति में परमात्मा से मिलने के लिए जब तीव्र लगन जगती है तो उसको मना करो तो मुँह से बोलना बन्द कर देगा, तो भीतर पुकारता रहेगा। ऐसी दशा क्यों होती है? एक बार मैं बैठ करके उस दशा को पकड़ने की कोशिश कर रही थी तो मुझे ऐसा दिखाई दिया कि परमात्मा से मिलने के लिए जिस साधक ने जो कुछ करना था सब कर लिया अब केवल साधन के फल के अभिमान का नाश करना बाकी रह गया है। अब यह काम तो परमात्मा करेंगे न। अपनी ओर से तो मैंने ठान लिया कि हम किसी प्रकार का सुख नहीं लेंगे तो सुख लेना छोड़ दिया। हम निरन्तर भजन करेंगे, तो कर लिया। तो करने का था वह कर लिया, छोड़ने का था वह छोड़ दिया। उसके बाद भी ऐसा लगता है कि हमारे और हमारे प्रेमास्पद के बीच के कुछ दूरी रह गई है। ऐसा लगता है साधक को, तो

उतना हिस्सा कब मिटेगा ? जब की हुई साधना का अभिमान मिटेगा तब मिटेगा वह। तो उतना-सा हिस्सा रह जाता है फिर तो साधक व्याकुल होने लगता है। अब क्या करें अब क्या करें, अब कैसे करें। अब कैसे मिलें। होते-होते ऐसे समय जब उसको सूझता है कि अब मेरे किए कुछ होगा नहीं अब तो स्वयं ही प्रभु अपनाए तो काम बने। तो इतना घना आकर्षण, इतना जोरदार आकर्षण परमात्मा की ओर से उस साधक को अपनी ओर खींचने लगता है। इतनी जोर से कि साधक जो है वह किसी भी भय से अथवा किसी भी प्रलोभन से उस ओर खिंचे बिना रुक नहीं सकता। ऐसा होता है। बहुत तीव्र प्रवाह होता है इसमें। बड़ा तीव्र आकर्षण होता है उस खिंचाव में। उस खिंचाव में भी इतना आकर्षण होता है उस मिठास में। जितनी भी आसक्ति रही होगी सुख-भोग की, वह सब दुर्बल पड़ जाती है और परमात्मा की ओर जो जोरदार सच्चा आकर्षण है, बलवान हो जाता है। इतना बलवान हो जाता है कि किए कराए, जन्म जन्मान्तर के सब अधिकार मिट जाते हैं, सब आसक्तियाँ छूट जाती है सब की विस्मृति हो जाती है। और साधक जब तीव्र व्याकुल हो जाता है तब उसके अहं का भी नाश हो जाता है, साधन के फल का अभिमान भी खत्म हो जाता है।

और अभिमान खत्म हुआ नहीं कि सत्य से अभिन्न होने का अनुभव हुआ। केवल इतनी-सी बात शेष रह जाती है, तो यह काम पूरा हो जाता है। तो आज इस संध्याकाल में अपने लोगों की अपनी दशा पर थोड़ा विचार करना है। यहाँ से उठने के बाद जब बोलना और सुनना बन्द हो जाए और दूसरे आवश्यक कार्य भी आपके पूरे हो जाए तो अकेले बैठ करके थोड़ा सा विचार करके देखिए कि सत्य के रास्ते पर चलने का प्रयास करते कितना समय बीता ? अपने को मालूम तो है न ? पता तो है ही। एक बार इसको देखिए। फिर ऐसा सोचिए, मैंने अपनी ओर से प्रयास

करके अपने जीवन को कितना ऊँचा उठाया, यह भी देख लो। फिर यह भी देख लो, कि यह सब करते हुए भी सत्य से अभिन्न होने का जो आनन्द है, वह आनन्द अगर अब तक नहीं आया और अपने को लगता है कि मैं रास्ते में हूँ, अभी घर नहीं पहुँचा ऐसा लगता है, तो घर न पहुँचने की पीड़ा अपने को क्यों नहीं है? ऐसा सोचिए। तो आप सभी भाई-बहनों को अलग-अलग उत्तर मिलेगा। और आज मैं उत्तर नहीं दूँगी।

हम सब लोग अलग-अलग बैठकर अकेले आज रात्रि में अपने से पूछेंगे कि अगर परमात्मा से मिलने का आनन्द मुझे नहीं आया कि सत्य से अभिन्न होने का आनन्द मुझे नहीं मिला तो जीवन का जो सबसे महत्त्वपूर्ण व आवश्यक कार्य है, वही पूरा नहीं हुआ तो उसका पूरे न होने का दुःख अपने को कितना है? यह भी देख लो क्योंकि और कोई उपाय चाहिए नहीं। केवल पीड़ा के तीव्र होने की बात है। तो पीड़ा इतनी तीव्र हो जाए कि और कुछ न सुहाए अपने को, तो काम बन गया। तो ऐसा सोचकर देखिएगा और कल प्रातः काल की बैठक में इस सम्बन्ध में हम और बातचीत करेंगे। जो प्रश्न सूझे, वह प्रश्न लिखकर ले आना।

जो उत्तर सूझे, छोटे-छोटे वाक्यों में, लम्बा-लम्बा नहीं, तो उत्तर लिखकर ले आना तो इस विषय में हम और बातचीत करेंगे। कहाँ से ऐसी शिथिलता जीवन में आ गई? कौन-सी ऐसी जड़ता जीवन में छा गई है? जीवन के लक्ष्य को भी हम लोग जानते हैं, लक्ष्य-पूर्ति के रास्ते को भी जानते हैं, थोड़ा बहुत चलते भी है और न पहुँचने की पीड़ा भी नहीं है। ऐसी जड़ता क्या हो सकती है जीवन में, इसके सम्बन्ध में थोड़ा सोच-विचार करने से अच्छा रहेगा। सुनाने के लिए तो मैं 2-4 बातें सुना दे सकती हूँ क्योंकि व्यक्तिगत रूप से अपना हाल मुझको मालूम है तो मैं सुना दे सकती हूँ लेकिन मेरे सुना देने से आपको उतना लाभ नहीं होगा। और अकेले बैठकर अपने बारे में स्वयं सोचिएगा और आपके जीवन की

दशा स्वयं आपके समझ में आएगी, तो उससे आप भाई-बहनों को विशेष लाभ होगा। इसलिए मैं नहीं सुना रही हूँ। कल सवेरे की बैठक में हम इससे सम्बन्धित बातचीत करेंगे। अब इस समय की वार्ता जो है, वह मैं पूरा करने जा रही हूँ। यह कह करके कि सन्त जनों का जो अनुभव है, वह बिल्कुल पक्का है, सत्य है उसमें कोई संदेह की बात नहीं है। और प्रत्येक अनुभवी संत ने हम लोगों को यह बताया कि सूर्य का प्रकाश और अंधकार का नाश एकदम एक साथ होता है। पता नहीं चलता है कि कब सूर्य का उदय हुआ और कब उसके बाद कब अंधकार का नाश हुआ? ऐसा कभी आप अनुभव करते हैं? या ऐसा कोई मौका आपको मिलता है कहने का, कि ठीक-ठीक अब सूर्योदय हो गया है अब थोड़ी देर में अन्धकार चला जाएगा। ऐसा मौका नहीं लगता है।

क्यों नहीं लगता है क्योंकि जैसे-जैसे सूर्योदय हो जाता है, साथ ही साथ अन्धकार मिटता जाता है। ऐसे ही मनुष्य के जीवन में ईश्वर-मिलन की लगन जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, ईश्वर और उनके भक्तों के बीच की जो दूरी है, वह ऐसे ही मिटती जाती है। जैसे सूर्यादय के प्रकाश से अन्धकार का नाश होना एकदम साथ ही साथ हो जाता है, आगे पीछे नहीं होता। देर नहीं लगती है, पता नहीं चलता है अपने को। कब क्या हो रहा था, कब क्या हो गया? सो बड़ा ही अद्‌भुत चमत्कारपूर्ण परिवर्तन मनुष्य के अहंरूपी अणु में होता है। और अब मैं कभी ऐसा सोचती हूँ कि सारी पढ़ाई-लिखाई हुई और समाज में बड़ी धूम-धाम मचाई और बहुत धन कमाया गया और बहुत धन जोड़ा गया, बहुत कुछ किया गया। आदमी को परमात्मा ने इतनी सामर्थ्य दी है कि छोटी सी जिंदगी में अल्प सामर्थ्य को ले करके ही बहुत कुछ करता रहता है और बहुत कुछ करने को सोचता रहता है, लेकिन सब कुछ हुआ तो क्या हुआ? यदि शरीरों की आसक्ति का नाश नहीं हुआ, तो जन्म-मरण का चक्कर नहीं खत्म होगा। तो कुछ

नहीं हुआ। यदि सर्वाधार परमात्मा, जो सब प्राणियों के जीवन का आधार है, उसका आधार ले करके हम सदा-सदा के लिए निश्चिन्त और निर्भय नहीं हो सके, तो क्या हुआ फिर? कुछ नहीं हुआ। और कभी-कभी मुझे हँसी भी आती है। कभी-कभी बहुत अच्छा भी लगता है जब मैं सोचती हूँ कि कितना करेगा एक आदमी अपनी जिंदगी में, कितना करेगा? आदमी के लिए संसार का कोई काम पूरा हो जाता है, ऐसा तो सम्भव है नहीं। करते जाओ, करते जाओ और अन्त में बहुत कुछ करने को शेष रह जाता है। जी! रहता है कि नहीं? रहता ही है। कभी-कभी मुझे अच्छा लगता है यह सोच करके कि आदमी की शक्ति तो बहुत ही सीमित है, लेकिन सीमित शक्तियों के द्वारा जो विराट संसार का काम कराने वाला परमात्मा है, उसकी शक्ति असीम है। तो क्या हुआ? अगर मेरा शरीर नाश हो गया अगर मेरी मृत्यु हो गई, मैंने अधूरा काम छोड़ दिया, तो काम अधूरा थोड़े रहेगा, नहीं रहेगा।

एक आदमी की जगह वह सामर्थ्यवान वह सृष्टिकर्त्ता दस आदमी को खड़ा कर दे सकता है, जो उस काम को पूरा कर दे। तो संसार के काम को पूरा करने का प्रश्न नहीं है, अपने जीवन में काम-रहित होने का प्रश्न है। दुनिया का काम खत्म होगा, सो कोई चिंता की बात नहीं है, दुनिया का मालिक तो है ही। थोड़ा बहुत हम जो करते हैं, सो करते हैं। बाकी तो वह सब अपना सँभालते ही रहते हैं, देखते ही रहते हैं, कराते ही रहते हैं। कभी-कभी बहुत मदद करने वाले साधक आ जाते और बहुत अच्छी तरह से काम होता तो कोई पूछते मुझसे कि अच्छा अब यह साधक आपके यहाँ से चले जाएँगे तो फिर यह काम कौन करेगा? तो मैं याद दिला देती। मैं कह देती कि जिसने इनको भेजा था वह थोड़े ही कहीं चला जाएगा। वह तो कहीं नहीं जाएगा। जिसने इनको भेजा था मेरा यह काम सँभालने के लिए वह एक की जगह दस भेज सकता है। तो मैं क्या

सोचूँगी कि इनके चले जाने के बाद क्या होगा? अगर आदमी का किया हुआ, तो आदमी सोचे। तो कराने वाला तो हर समय मौजूद है और उसकी सामर्थ्य की भी कभी कहीं कमी नहीं होती।

तो प्रश्न अपने लोगों के सामने क्या है? तो प्रश्न यह नहीं है कि मैंने संसार का बड़ा-बड़ा काम कर दिया और मैंने जो काम हाथ में उठाया, उसको पूरा कर दिया। यह सब तो बिल्कुल बकवास की बातें हैं। वह तो उसके मंगलमय विधान से जो भी कुछ हो जाए सो बढ़िया और मुझको किसी प्रकार से अपनी शृंखला के चलाने में मुझको एक कड़ी बना करके सृष्टिकर्त्ता कहीं fit कर ले, तो मेरा सौभाग्य, ऐसा मैं मानती हूँ। उसकी विशेषता नहीं है। विशेषता यह है कि छोटा-सा काम करने को मिला है आपको, चाहे बड़ा-सा काम करने को मिला जो करने को मिला, सो करके आप स्वयं राग-रहित हो गए कि नहीं? जीवन में से आसक्ति का नाश हो गया कि नहीं? सत्य से अभिन्नता हो गई कि नहीं? चिर शांति की अभिव्यक्ति हो गई कि नहीं अथवा भगवत् विश्वासी हैं तो प्रभु-मिलन में अनन्त प्रेम के आदान-प्रदान का प्रोग्राम पूरा हुआ कि नहीं, यह सोचने की बात है।

इसलिए हम लोगों को क्या करना चाहिए? कि जो भी कोई काम सामने आता है, कोई साधक जरा दिल खोल करके काम करने वाला होता है स्वभाव होता है, किसी-किसी का। परिश्रम करना किसी-किसी को प्रिय लगता है तो इसके आगे ज्यादा-ज्यादा काम आता रहता है। और कोई शारीरिक स्वास्थ्य के कारण धीरे-धीरे काम करने वाला होता है तो उसके पास कुछ कम काम आता है। तो जितना भी काम अपने लोगों के सामने आए और जितनी भी सामर्थ्य हो करने की, उस सम्पूर्ण दैनिक रुटिन को और सारे कार्यक्रम को कहाँ fit करना चाहिए तो अपनी साधना के रूप में उस साध्य की अभिव्यक्ति के मामले में उसको fit करना चाहिए। काम शुरू करने जाओ तो एक बार सोच करके चलो कि ये भाई, यह काम तो

मुझे इसलिए करना है, कि करने का राग मेरा निवृत्त हो जाए और मैं शांति में रह सकूँ। काम खत्म हो जाए, विश्राम के लिए जाएँ तो इस बात को याद करके हटें वहाँ से। तो लाभ का लोभ और हानि का भय और कर्त्तापन का अभिमान और समाज का सम्मान यह सब बीमारी हमारी छूट जाएगी। लाभ का लोभ भी छूट जाएगा, हानि का भय भी छूट जाएगा, कर्त्तापन का अभिमान भी छूट जाएगा समाज के दिए हुए सम्मान का रोग भी छूट जाएगा। किसका छूट जाएगा? जो सब समय लक्ष्य को दृष्टि में रख करके काम करने चलेगा, उसका सब छूट जाएगा। ऐसा नहीं कि किसी को दफ्तर में बैठ करके पदाधिकारी बना दिया गया, तो वहाँ से हकूमत चलाने लग गया और मुझे तो झाड़ू लगाने का काम दे दिया, यह तो छोटा काम है। तो कोई बड़ा काम कर रहा है तो हम भी बड़ा काम करेंगे, छोटा काम क्यों करें? यह साधक की दृष्टि नहीं है। हो सकता है कि दफ्तर में बैठकर order देने वाला बंधन में रह जाए और निरभिमानता पूर्वक झाड़ू लगाने वाला पार हो जाए। ऐसा हो सकता है।

तो परिवार में, कुटुम्ब में रह करके काम करती हैं तो क्या और समाज में काम करते हैं तो क्या, संस्था में काम करते हैं तो क्या? काम छोटा बड़ा नहीं होता है साधक की दृष्टि से। और काम को पूरा करने का प्रश्न, उसकी जिम्मेदारी में भाग नहीं लेना चाहिए। देखना चाहिए कि किसी भी काम को इतनी लगन से करो, इतने ज्ञान पूर्वक करो, इतने प्रेम पूर्वक करो कि करने का राग खत्म हो जाए और सत्य से अभिन्न होने की आवश्यकता तीव्र हो जाए। आवश्यकता क्यों नहीं बढ़ी? शीघ्रता क्यों नहीं आई? सत्य से अभिन्न नहीं हो सके तो इसकी पीड़ा क्यों नहीं बढ़ी? ऐसा सोचते रहो, सोचते रहो, सोचते रहो। कारण भी दिखाई देगा, निवारण भी होगा और काम बन जाएगा। अब हो गया। अब शांत हो जाइए।

●

प्रवचन 15

पूज्य संत महानुभाव, सत्संग-प्रेमी माताओ, बहनो और भाइयो !

मनुष्य के व्यक्तित्व में तीन प्रकार की शक्तियाँ है—क्रियाशक्ति, भावशक्ति और विचारशक्ति। इन तीनों शक्तियों के आधार पर साधना के अलग-अलग तीन अंग होते हैं। इनमें से भाव-शक्ति के आधार पर मनुष्य ईश्वर-विश्वास को धारण करता है और ईश्वर-विश्वास का एक विशेष साधन-पंथ है, जिसके आधार पर ईश्वर-विश्वासी साधक अपनी वर्तमान दैनिक दशा से मुक्त होकर जीवन की पूर्णता तक पहुँचता है।

मानव सेवा संघ के सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर-विश्वास शरीर-धर्म नहीं है स्वधर्म है। बातें तो बहुत-सी है और बहुत प्रकार से हमारे भाई-बहन इन बातों को सुन चुके हैं। किन्तु कुछ खास-खास बातें जो इस विचारधारा के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक हैं। और अधिकांश भाई-बहन हमारे जो यहाँ बैठे हैं, उनमें अधिकांश साधक ईश्वर विश्वास को रखने वाले हैं। तो उनके हित के लिए भी और विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए भी कुछ आवश्यक बातें आपकी सेवा में निवेदन करूँगी।

तो पहली बात हम सब लोगों के लिए ज्ञातव्य, जिसे कि हम सब लोगों को जानना चाहिए वह यह है कि ईश्वर-विश्वास शरीर-धर्म नहीं है स्वधर्म है। शरीर धर्म और स्वधर्म का क्या अर्थ है ? कि शरीर धर्म का अर्थ यह है कि जिसको शरीर की सहायता से पूरा किया जा सके। यह शरीर-धर्म है और जिसको स्वयं अपने द्वारा पूरा किया जा सके वह स्वधर्म है। मानव सेवा संघ के सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर-विश्वास शरीर-धर्म नहीं है, स्वधर्म है अर्थात् यह शरीरों की सहायता से नहीं पूरा किया जाता, यह अपने द्वारा स्वीकार किया जाता है। प्रातः काल की बैठक में जैसा मैंने निवेदन किया था कि हमारा आपका यह मैं-पन जो है जिसको हम

लोग कहते हैं कि मैं हूँ। मेरा अस्तित्व, मेरी सत्ता, अपना अहं अनेक शब्दों में प्रकाशित किया जाता है उसको, तो वह बड़ा विलक्षण है, बड़ा विचित्र है और इसकी सबसे बड़ी विचित्रता क्या है कि जिस संसार से मैं का जातीय सम्बन्ध नहीं है नित्य एकता नहीं है उस शरीर के साथ तादत्म्य जोड़ लेने पर उत्पत्ति-विनाश से युक्त जो शरीर के लक्षण हैं वे सब मैं पर आरोपित हो जाते हैं।

पहले युवक था, अब वृद्ध हूँ, पहले स्वस्थ था अब बीमार हूँ, जिंदा था, मर रहा हूँ, अमीर था गरीब हूँ, गरीब था अमीर हो गया तो जो बदलने वाली दशाएँ है, वे शरीर की है और जो शरीर की धातु से परे बना हुआ 'मैं' है वह जब शरीर के साथ अपने को मिला लेता है तो शरीर के लक्षण उस पर स्वयं पर घटित होने लगते हैं। और उसी के अनुसार हम सब लोग अपने को दु:खी सुखी मानने भी लगते हैं और उसी तरह से feel भी करने लगते हैं। तो इसी लिए यह चर्चा आई कि ईश्वर-विश्वास को जब धारण किया जाता है अर्थात् कोई भी साधक अपनी साधना के लिए, अपने जीवन को पूर्ण करने के लिए सत्य को अपने व्यक्तित्व में अभिव्यक्त करने के लिए परमात्मा की सत्ता को स्वीकार कर लेता है, तो यह स्वीकृति 'स्व' के द्वारा होती है, शरीर के द्वारा नहीं होती है। इस स्वीकृति में हाथ-पैर, आँख, नाक, कान की सहायता नहीं चाहिए, यह स्वीकृति मन के द्वारा है। जिसने पहले यह स्वीकार किया था कि मैंने कि शरीर का हूँ, मैं कुटुम्ब का हूँ, मैं मकान का हूँ, मैं दुकान का हूँ, अनेक प्रकार की ममताएँ अनेक प्रकार के सम्बन्ध पहले जिसने स्वीकार किया था वहीं 'मैं' इन सब असाधन रूपी अस्वीकृतियों को अस्वीकार करके एक सत्य की स्वीकृति कर लेता है, गुरु की सहायता से, ग्रन्थ की सहायता से, जीवन की आवश्यकता से। तो अपने द्वारा वह मान लेता है, कि भगवान हैं। अब मैं और किसी का नहीं हूँ, केवल परमात्मा का हूँ। तो प्रभु की सत्ता स्वीकार करना, उनके

साथ मेरा नित्य सम्बन्ध है इस बात को स्वीकार करना और उनकी प्रियता के अतिरिक्त इस जीवन का दूसरा कोई अर्थ नहीं है, इस सत्य को स्वीकार करना ईश्वरवाद कहलाता है। फिर दोहराती हूँ एक बार और सुन लेना। क्योंकि भजन, चिंतन, ध्यान, पूजन, प्रेम भगवान के सम्बन्ध में जो सब लोग चाहते ही रहते हैं। आवश्यकता तो हम सब लोग महसूस करते हैं, कि भगवान की याद बनी रहे, भगवान का ध्यान बना रहे, उनके चिंतन में रहें उनके प्रेम से हृदय भर जाए, ऐसी अभिलाषा सभी ईश्वर-विश्वासी साधकों की होती है। लेकिन इस अभिलाषा की पूर्ति में बड़ी देर लगती रहती है, साधन परेशान होते रहते हैं।

मानव सेवा संघ में ईश्वर-विश्वास का जो main आधार है, जिस आधार पर यह सारे साधन-तत्त्व व्यक्तित्व में अभिव्यक्त होते हैं, उन आधारों को अपने भाई-बहनों के सामने रखा। हमने स्वेच्छा से ईश्वर-विश्वास पसंद किया, दबाव से नहीं, जबरदस्ती से नहीं। क्यों? क्योंकि आन्तरिक जीवन का जो विकास है वह दबाव से नहीं होता, जबरदस्ती से नहीं होता है, आरोपित करने से नहीं होता है, वह स्वेच्छा से होता है। तो स्वाधीनता पूर्वक स्वेच्छा से हम भाई-बहनों ने स्वीकार किया कि हम ईश्वर-विश्वासी है। उनकी सता में विश्वास करते हैं, उनको अपना नित्य सम्बन्धी मानते हैं, आत्मीय सम्बन्ध मानते हैं। और अब मैंने यह व्रत लिया है कि मेरे जीवन का अर्थ केवल प्रभु-प्रेम है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तो यह स्वधर्म है, ऐसी स्वीकृति व्यक्ति अपने द्वारा लेता है। इस में अभ्यास हेतु नहीं है कि इन बातों को बहुत बार दोहराऊँ तो पक्का हो जाएगा, बहुत बार बोलूँगी तो पक्का हो जाएगा, कि बहुत बार सूनूँगी तो पक्का हो जाएगा। तो अभ्यास से इसमें काम नहीं चलता। इस सत्य को स्वीकार करना मानव सेवा संघ की भाषा में सत्संग कहलाता है। अभी जो ईश्वर की बातचीत हो रही है, यह बातचीत ईश्वर की चर्चा है। और सुन करके

किसी भी भाई ने, किसी भी बहन ने निश्चय कर लिया कि बिल्कुल सच्ची बात है। अब तो हम केवल ईश्वर में ही विश्वास करेंगे और उन्हीं के होकर रहेंगे, उनके प्रेम के लिए हम जिएँगे, ऐसा जिसने अपनी ओर से ठान लिया, उसका सत्संग हो गया। तो सत्संग अपना पुरुषार्थ है, स्वधर्म है। और सत्संग के फल से साधक के जीवन में साधना की अभिव्यक्ति होती है। अपने आप से साधन होने लगता है, करना नहीं पड़ता है। तो आपने भी यह सुना होगा, मैंने भी सुना है। क्या सुना है? कि अपने द्वारा केवल परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करना, उसके अतिरिक्त और कुछ न चाहना, उसके प्रेम को ही जीवन मानना इस पर तो साधक वर्ग की दृष्टि नहीं जाती, इस स्वधर्म पालन पर। दृष्टि किस बात पर जाती है कि मुझे अगर समय मिलता तो हम इतनी देर बैठकर नाम लेते।

अगर मुझे समय मिलता तो हम इतने समय बैठकर जप करते कि ग्रन्थ पढ़ते, कि ध्यान करते, कि पूजन करते, कि भजन गाते इस तरफ ध्यान जाता है। हम कुछ करें ईश्वर-विश्वासी होने के अनुसार हमको कुछ करना है, ऐसा सोचकर सत्संग किए बिना साधक जब साधना में लग जाता है तो उसको सफलता नहीं मिलती है अर्थात् प्रभु की सत्ता को स्वीकार करना, उनसे अपनी आत्मीयता स्वीकार करना और उनके प्रेम को ही जीवन मानना। इन तीन बातों को प्रारम्भ में किए बिना जब हम भजन करना चाहते हैं, साधन करना चाहते हैं, ध्यान करना चाहते हैं तो मन लगाना चाहते हैं भगवान में, तो हमारी यह अभिलाषा पूरी नहीं होनी है, तकलीफ होती है। तो स्वामी जी महाराज के हृदय में एक बड़ी पीड़ा थी। वह क्या थी? उन्होंने अपने मुख से कहा और मैंने लिखकर रखा है। क्या कहा उन्होंने? मुझे जब ईश्वर-विश्वास मिला, ऐसा कहा। शब्द पर ध्यान दीजिएगा, मैंने ईश्वर-विश्वास प्राप्त किया, ऐसा नहीं कहा। कहा मुझे जब ईश्वर-विश्वास मिला और उसके प्रभाव से मैंने देखा तो मेरे भीतर एक

बड़ी लगन लग गई कि कोई भी भाई, कोई भी बहन ऐसा न हो जो ईश्वर-विश्वास से वंचित रह जाए। अर्थात् सबको ईश्वर में विश्वास मिल जाना चाहिए। सबका दुःख मिट जाए, सब निश्चिन्त हो जाएँ, सब निर्भय हो जाएँ, ऐसा एक सर्वहितकारी भाव उस महापुरुष में जग गया तो उन्होंने विश्वास करो और विश्वास मिला इन दोनों में थोड़ा सा भेद रखा। क्या भेद रखा? कि मनुष्य का विकास चाहे भक्ति-पंथ में, चाहे ज्ञान-पंथ में और चाहे कर्म-पंथ में, किसी भी रास्ते से व्यक्ति का जो विकास है वह सत्य की स्वीकृति से आरम्भ होता है। सत्य की स्वीकृति से क्या होता है? कि अहं रूपी अणु में आमूल परिवर्तन होता है तो वहाँ से आरम्भ हुआ। जिसने प्रभु को अपना माना तो उनकी सत्ता को स्वीकार करने मात्र से वह आश्वस्त हो गया। मेरा भी प्रभु पति है, मैं अनाथ नहीं हूँ, मैं असहाय नहीं हूँ; मेरा समर्थ स्वामी है।

पैगम्बर मुहम्मद युद्ध में जा रहे थे एक मित्र के साथ तो नगर के प्रेमी लोगों ने आगे से आकर उनको घेरा और कहा कि वहाँ बड़ा भारी समूह है, बड़ी भारी सेना है दुश्मन की। आप तो एक ही के साथ जा रहे हैं, आप लोग तो दो ही मित्र जा रहे हैं, वहाँ तो बहुत सेना है तो ऐसा मत कीजिए और सेना अपने साथ ले लीजिए। तो पैगम्बर मुस्कराए और उन्होंने कहा कि हम दो ही नहीं हैं मेरे साथ एक और है। वह दुनिया की सारी शक्तियों का सामना कर सकता है। इसलिए आप लोग डरिए मत, निश्चिन्त रहिए। अब सोच कर देखो उनके ईश्वर-विश्वास व मेरे ईश्वर-विश्वास में कितना अन्तर है? कितनी सजीवता है उनके विश्वास में। कि बाहर से दिखाई तो नहीं देता, प्रेमी लोग, नगर के लोग घबरा रहे हैं ये दो ही आदमी जा रहे हैं इतनी बड़ी सेना से लड़ेगे कैसे? तो मौहम्मद मुस्कराते हैं नहीं, नहीं हम दो ही नहीं हैं मेरे साथ एक और है। और वह अकेला ही सारी सृष्टि की शक्ति का सामना करने के लिए तैयार है। यह

कहलाता है उनकी सत्ता को स्वीकार करना। तो जिसने सत्ता को स्वीकार किया और केवल सत्ता नहीं, नहीं तो मेरी तरह अक्खड़ स्वभाव का आदमी हो तो उससे कह दे झट से, होंगे जिसके लिए होंगे, हमारे काम नहीं आते तो हम काहे के लिए सोचें। तो केवल सत्ता नहीं वह है और मेरा केवल उसी से नित्य सम्बन्ध है और बाकी सब जो दिख रहे हैं वह क्या है? तो यह सब तो उसके हैं। उसके नाते इन सबकी सेवा करो, सबका भला मनाओ, सबसे मीठा बोलो, सबका आदर सत्कार करो सबको सहयोग दो भले, पर अपना नित्य सम्बन्ध केवल उसी से है।

तो ऐसा जिन ईश्वर-विश्वासियों ने माना, उनके जीवन में ईश्वर की उपस्थिति का प्रत्यक्ष अनुभव हो गया। तो कितने दिन में हो गया, कितनी बार कहना पड़ा कि मेरा उससे नित्य सम्बन्ध है, मेरा उससे नित्य सम्बन्ध है। जप करना पड़ा कि लिखना पड़ा कि करना पड़ा कि बोलना पड़ा, सो नहीं है। और महाराज बड़ा सहज उदाहरण दे देते कि भाई मेरे, जब तुम विवाह करने गए थे, वेदी पर बैठे थे तो तुमसे मंत्र थोड़े जपवाया गया कि यह लड़की मेरी पत्नी है। दोहराया, बार-बार कहा तुमने? सो तो नहीं कहा। और तुमने तो अपने मुख से कहा भी नहीं, पंडित ने मंत्र पढ़ दिया और तुमने मान लिया। मान लेने के बाद से कभी विस्मृति हुई क्या? कि यह लड़की मेरी पत्नी है कि नहीं है। संदेह हुआ? नहीं हुआ। मान्यता का बड़ा जोरदार प्रभाव होता है। मनुष्य के अहं में स्वीकृति को स्वीकार करने की बड़ी अद्‌भुत क्षमता है। तो महाराज कहते हैं जो अपना होगा और अपने पास होगा और समर्थ होगा और अपने ही में विद्यमान होगा, उसको याद करोगे, उसका नाम जपोगे, कि उसका चिंतन करोगे कि उसका ध्यान करोगे कि उसका काम करोगे। क्या करोगे? उसको प्यार करोगे कि उसको बुलाओगे।

ईश्वर-वाद मनुष्य के जीवन का एक अद्‌भुत तत्त्व है। और कभी-कभी मैं सोचती हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है कि जिसने व्यक्तित्व में अभाव अनुभव किया, जिसने व्यक्तित्व में नीरसता की पीड़ा को अनुभव किया, वह अगर उस अनन्त परमात्मा को अपना परम प्रेमास्पद मान करके उनकी विभूतियाँ से सम्पन्न नहीं हुआ तो फिर उसके जन्म लेने का अर्थ ही क्या निकला? कुछ नहीं निकला। बड़ा भारी महल बना लिया, बहुत दुनिया में नाम कमा लिया, बहुत धन कमा लिया, बहुत साथी जोड़ लिए। जितना भी सब यहाँ पर किया गया हो, आधुनिक ढंग की भाषा में बड़े गौरव से लोग कहते हैं उनकी तो बड़ी उन्नति हो गई। वह आदमी तो बहुत rise कर गया। अँग्रेजी मिला-मिला कर हम बोलते हैं न तो कहते हैं कि बहुत rise किया, तो मैं भीतर-भीतर सोचती हूँ कि कोई आदमी बड़ा rise कर गया बड़ा ऊँचा उठ गया, तो इसका माप-दण्ड अपने पास क्या है? क्या वह ज्ञान में ऊँचा उठ गया? क्या वह प्रेम में ऊँचा उठ गया, क्या वह उस अलख-अगोचर अविनाशी को अपने सामने, अपने भीतर-बाहर प्रत्यक्ष करके उससे मिल गया। अगर यह सब हो गया तो कहना चाहिए सचमुच उसने rise किया। और अगर मकान और दुकान दलबन्दी और सम्पत्ति और डिग्री यह सब माध्यम माना जा रहा है rise करने का अर्थ, यह लिया जा रहा है तो जिस दिन आँखों से दिखाई नहीं देगा, तो पढ़ा लिखा हुआ क्या काम आएगा? जिस दिन मुख से बोला नहीं जाएगा तो वक्तव्य की शक्ति किस काम आएगी। जिस दिन खाया नहीं जाएगा, उस दिन बढ़िया-बढ़िया भोज्य पदार्थ क्या काम आएगा? तो rise करना तो धूल में मिल गया, rise करना क्या कहलाएगा।

जब सब प्रकार से तुम दीन-हीन हो गए और सारा सामान और सब साथी जो इकट्ठा किया था एक भी साथ नहीं दे रहा है तो हम अपने को ही certificate दे लें, हम कह सकेंगे कि मैंने बड़ा rise किया। जी!

नहीं कह सकेंगे। तो ऐसा जो एक अनमोल जीवन है जो कुछ हमें दिखाई दे रहा है जो कुछ बुद्धि के आर-पार समझ में आ रहा है, उस देखे हुए और समझे हुए के परे अगर अविनाशी अनन्त तत्त्व से मेरा मेल नहीं हुआ, उससे मेरी अभिन्नता नहीं हुई, तो मैं तो ऐसा सोचती हूँ कि जीवन निरर्थक ही गया। और फिर बड़े दु:ख की बात है कि हम अपने को ईश्वर-विश्वासी भी कहते हैं और देह के विश्वास पर चलते हैं, धन के विश्वास पर चलते हैं, बल के विश्वास पर चलते हैं, अपनी बुद्धिमानी के विश्वास पर चलते हैं। यह तो और भी दु:ख की बात है। तो मानव सेवा संघ की दृष्टि से ईश्वर-विश्वास की साधना जो है, वह स्वधर्म पर आधारित है। अपने द्वारा उस सत्ता के स्वीकार करने पर आधारित है। और जितने साधना के रूप है, वे सारी साधनाएँ इस आत्मीय सम्बन्ध की स्वीकृति में से निकलने वाली हैं। थोड़ी-थोड़ी देर में उनकी याद आ रही है, उनकी उपस्थिति के आभास से जीवन में निर्भयता आ रही है, उनकी उपस्थिति के आभास से हृदय में मधुरता आ रही है, तो उनकी मधुर स्मृति का जाग्रत हो जाना, यह साधन होता है। कैसे उत्पन्न हुआ? आत्मीय सम्बन्ध की स्वीकृति से। तो आत्मीय सम्बन्ध की स्वीकृति सत्संग है और उससे उत्पन्न हुई स्मृति साधना है। और उस स्मृति की वृद्धि जब होती है, तो प्रभु की स्मृति प्रभु के समान ही मधुर है।

उसमें बड़ा रस है उसमें बड़ा आकर्षण है। और जैसे-जैसे स्मृति तीव्र होती जाती है, उससे भिन्न सबकी विस्मृति भी होती जाती है। और अन्त में क्या होता है? साधक के अहं में सिवाय भगवत्-स्मृति के और दूसरा कुछ रह ही नहीं जाता। तब उस मधुरता में, उस रस में सीमित अहं-भाव का लोप हो जाता है। प्रेमी और प्रेमास्पद मिलकर एक हो जाता है। अब बताइए, आप सोच करके देखिए कि ईश्वर-विश्वास का आरम्भ किया था स्वधर्म से। और उसकी वृद्धि कैसे हुई? तो स्वधर्म से उदित

हुई साधना से। और उसकी पूर्णता कहाँ जाकर के हुई? कि जहाँ अहं में से सब कुछ निकल गया, केवल एक स्मृति मात्र ही रह गई। तो सीमित अहं-भाव का भी लोप हो गया और सम्पूर्ण अहं प्रेम के धातु में परिवर्तित हो करके प्रेमास्पद से एक हो गया। तो आरम्भ भी हुआ था स्वधर्म से, विकास भी हुआ अपने में उदित हुई साधना-तत्त्व से । तो जगह-जगह महाराज जी ने इस बात को प्रकट किया है कि साधन-तत्त्व जो है वह भी जीवन सत्य है, वह भी अभ्यास पर आधारित नहीं है। शरीर के द्वारा किए गए अभ्यास का परिणाम वह नहीं है। अपने द्वारा किए स्वीकार किए गए सत्य की अभिव्यक्ति है वह। तो कहाँ तो जीवन का यह सत्य और कहाँ हम लोगों का थोथा प्रयास।

अब इतनी देर बैठकर नाम लेंगे तो इन्तजाम तो ऐसा किया था कि अब तो हम 2–3 घण्टे दुनिया की ओर देखेगे नहीं, अकेले में बैठ जाएँगे, कमरा बन्द कर लेगे और प्रभु का नाम लेगे। तो कमरे में बन्द हो जाने से, अकेले में बैठ जाने से, अपने पर जोर डालने से नाम तो हृदय में आया नहीं। ज़ोर डालकर थोड़ी देर मैंने नाम लेने का प्रयास किया, तो नीरसता से मानस में थकान आने लग गई। फिर क्या हुआ कि बीच-बीच में दूसरी-दूसरी बातों की याद आने लग गई तो जोर डालने से साधन नहीं बनता है जबरदस्ती करने से साधन नहीं बनता है।

ईश्वर-भक्ति जो है, वह किसी क्रिया का परिणाम नहीं है। ईश्वर-भक्ति जो है वह ईश्वर के साथ आत्मीय सम्बन्ध को स्वीकार करने पर उदित होती है। तो प्रारम्भ में भी आप ही हैं और साधन-तत्त्व की अभिव्यक्ति आप ही में हुई, मन में, बुद्धि में, चित्त में, शरीर में नहीं हुई। प्रभु का नाम हृदय में याद आया और प्रेम उमड़ा तो उसके प्रभाव से रोमांच हो रहा है कि उसके प्रभाव से अश्रुपात हो रहा है कि आँखें सजल हो रही है कि देह की विस्मृति हो रही है। ऐसा भी होता है। प्यारे प्रभु

की याद आई तो सशरीर बैठे हुए होने पर भी देह का भास खत्म होने लगता है। तो आप देखेगे कि सत्संग भी व्यक्ति का स्वधर्म है और सत्संग के प्रभाव से जिस साधन-तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है, वह भी स्व में से ही होती है। और हम क्या कहते हैं? हम कहते हैं कि महात्मा जी कोई उपाय बताइए कि मेरा मन भगवान में लग जाए। तो मन भगवान में कैसे लग जाएगा। और मन को जबरदस्ती लगा भी लोगे तो तुम्हें क्या मिलेगा? मन तो तुम्हारे पास तक पहुँच नहीं सकता, चित्त तो तुम्हारे पास तक पहुँच ही नहीं सकता है। ये मन, चित्त, बुद्धि, इन्द्रियाँ ये सब शक्तियाँ जो है ये तो Universal energy हैं समष्टि शक्तियों के हिस्से हैं। इनकी सीमा तो भौतिक तत्त्वों के भीतर है। तो साधन-तत्त्व की अभिव्यक्ति तो स्व में से होती है। तो सत्य की स्वीकृति कहाँ हुई? अपने द्वारा स्व में हुई, और साधन की अभिव्यक्ति कहाँ हुई? वह भी स्व में हुई। और भगवान में जाकर विलीन कौन हुआ? वह भी स्व हुआ। तो अपनी बात है न यह। अपनी बात है यह शरीर धर्म नहीं है।

अब आगे अपने लोगों को सामने रखकर देखना है और सोचना है कि अगर इस जीवन की अन्तिम परिणति प्रभु-प्रेम की अभिव्यक्ति है तो इस वर्तमान क्षण में हम सब भाई-बहन जहाँ हैं, जैसे हैं, क्या करें? कैसे करें? कैसे आगे बढ़ें? तो भाई, क्रियात्मक जो बातें हैं जीवन की उन पर तो जोर डालने की बात नहीं है। किसी की बहुत रुचि हो तो भले करे, किए बिना न रहा जाए तो। लेकिन जोर डालने की बात क्या है? कि अपने व्यक्तित्व में सिवाय परमात्मा के और किसी की सत्ता न मानों और किसी की महत्ता मत मानो उसके आत्मीय सम्बन्ध को न भूलो और उसी के होकर रहना उसके प्रेम को ही जीवन का अर्थ मानना और उसी के नाते निकटवर्ती जन-समुदाय की सेवा करना। तो प्रभु के नाते निकटवर्त्ती जन समुदाय की सेवा, एक बात हो गई। और संसार से और निकटवर्ती समुदाय

से कुछ न माँगना, त्याग की बात हो गई। जिस प्रभु का प्रेम अपने को अभीष्ट है, उससे भी कुछ न माँगना यह त्याग की बात हो गई और सिवाय उनके प्रेम के और कोई दूसरा अर्थ ही नहीं है उनकी प्रसन्नता के लिए उनको प्यार करना यह अन्तिम बात हो गई।

महाराज जी का एक नोट है। एक जगह पर कहा होगा, मैंने लिखा होगा। तो उसमें लिखा है कि मैं ईश्वर वादी केवल इसलिए हूँ—स्वामी जी की वाणी है—मैं ईश्वर वादी केवल इसलिए हूँ कि मुझे जो चाहिए था वह और जो परमात्मा के देने की चीज थी, उन्होंने बिना मेरे माँगे स्वयं ही दे दिया। और संसार से विलग मैं क्यों हुआ? कि संसार के पीछे खूब दौड़ा, खूब दौड़ा, दौड़ा लेकिन कुछ नहीं पाया। तो माँगने पर भी संसार ने मुझे कुछ नहीं दिया और न माँगने पर भी उसने सब कुछ दिया इसलिए संसार को मैंने छोड़ दिया, परमात्मा को पकड़ लिया। यह मैं अपनी बात कह रहा हूँ, अपनी तरफ से।

तो बड़ा विलक्षण तत्त्व है मानव जीवन का ईश्वर-विश्वास। और इसके द्वारा बड़ा परिवर्तन होता है बड़ा चमत्कार आता है जीवन में। जिस दिन से उनको अपना माना अनाथ-पन सदा के लिए मिट गया। जिस दिन से उनकी महिमा स्वीकार की, सब तरह का भय मिट गया। जिस दिन से उनके होकर रहना पसंद किया तो अहं का अभिमान चला गया। प्रभु हैं, मेरे है, और मैं उनका हूँ और उन्हीं की प्रसन्नता के लिए यह जीवन है। तो वे जैसे रखें वैसे रहो, जो कराएं सो करो।

मीरा जी कहती हैं जित बैठाओ तित ही बैठूँ, जहाँ बैठा दो वहाँ बैठ जाऊँ और जो देओ सो खाऊँ, जो तुम दे दो, वहीं मैं खाँऊ जो रंग राचे आप साँवरिया ताही में रंग जाऊँ, क्या अर्थ है?

अपना कोई संकल्प नहीं है अब देखिए महाराज जी ने एक गद्य-खण्ड लिखा है तो उसमें यह लिखा है कि परमात्मा के प्रेम से जीवन

भरा नहीं, इस दिशा में असफलता रह गई। कारण क्या है? बहुत से कारण हो सकते हैं। एक कारण उन्होंने बहुत interesting लिखा है। अब तक मेरा ध्यान उस पर नहीं गया था। अभी दो-चार दिन पहले मैं Note पढ़ रही थी तो उसमें निकला। बड़ा विचित्र है। वे कहते हैं कि देखो भाई, परमात्मा को पसंद करने वाले होकर भी, ईश्वर-विश्वासी और ईश्वर-भक्त होने के अभिलाषी हो करके क्या पसंद किया हमने? तो हमने प्रभु को प्रेम प्रदान करना नहीं पसंद किया। हमने प्रभु को अपना प्रेमास्पद बनाने के लिए उनकी नहीं पसंद किया। क्या पसंद किया? मेरी वेशभूषा से, मेरी दैनिक दिनचर्या से, नाम लेने से, तरह-तरह के विधि-विधान से हम प्रभु को नहीं चाहते हैं, प्रभु-पद चाहते हैं। यह लिखा है महाराज जी ने।

मैं स्वयं प्रभु हो जाना चाहता हूँ। क्यों? लोगों के मन में श्रद्धा हो जाए। तो प्रभु को तुम नहीं चाहते। वे तो तुमसे मिलने को बड़े लालायित है और उन्होंने तो ठेका लिया है कि जो मुझे पसंद करेगा उसी से मैं मिल जाऊँगा। चाहे वह रविदास हो तो चाहे शबरी हो तो चाहे पंडितपंथ में पैदा हुए तुलसीदास हो तो। जो मुझे पसंद करेगा उसी से मैं मिल जाऊँगा, तो यह तो प्रण उनका है। हमने क्या किया? हमने प्रभु को पसंद नहीं किया, प्रभु-पद पसंद किया। तो भगवत् भक्ति का नाम लेकर भगवान का नाम लेकर मैं उस पद पर प्रतिष्ठित हो जाऊँ जिस पद पर प्रभु प्रतिष्ठित हैं। तो लोग मेरी आराधना करें, लोग मेरा ध्यान करें लोग मुझ में श्रद्धा रखें, तो लक्ष्य बदल गया न।

इसलिए असफलता हो गई सफलता मिल ही नहीं सकती। और उनका ढंग कैसा है? वे तो बड़े रसिक हैं बड़े कौतुकी हैं। मैंने तो साधन-काल में थोड़े समय में ऐसा पाया सोचने से बड़ा ही कैसा लगता है कि हम कैसे बताएँ? लेकिन मैंने ऐसा पाया कि अनेक प्रकार के संकल्पों

में फँसा हुआ व्यक्ति अनेक प्रकार के विचारों से भरा हुआ व्यक्ति यदि अपनी दुर्दशा से पीड़ित होकर, संत की सलाह मानकर, ग्रन्थ की सलाह मानकर जब वह सब भले-बुरे संकल्पों को प्रभु-प्रेम के लिए छोड़ देता है।

प्रारम्भ तो करेगा ही। तो जिस दिन आरम्भ किया उस दिन निश्छल, निर्भय तो थे नहीं। बहुत प्रकार की कमजोरियाँ भीतर में थी। बहुत प्रकार के दोष भीतर में थे। बहुत-सी अतृप्त वासनाएँ, कामनाएँ भीतर थीं तो ऐसी दशा में ईश्वर-विश्वास को धारण करके, उनकी भक्ति, उनकी पूजा, उनकी आराधना, उनके प्रेम के लिए आपने जीवन को आरम्भ किया। तो उन परम कृपालु की कृपालुता ऐसी देखी गई है कि बहुत छोटे-छोटे संकल्प, बहुत मामूली-मामूली बातें लेकिन आपके लिए हितकर हैं, जिनको आपने प्रभु-प्रेम के लिए छोड़ दिया था, उनमें से बहुत से संकल्प उनकी कृपा से पूरे किए जाते हैं और उनसे साधक को मुक्ति दिलाई जाती है। ऐसा होता है। कभी-कभी तो मैं आश्चर्यचकित हो करके स्वामी जी महाराज से बताती कि महाराज अब यह क्या बात है? जब मैं संकल्पों को लेकर के जीती थी तब आपने कहा था कि लाली, झोली में जो भरा है, वह सब पहले झाड़ दो तुम खाली हो जाओ तब सगाई की बातचीत होगी। वह शब्दावली मुझको ठीक से उच्चारण करना नहीं आता है जो लोग जानते हैं वे लोग ठीक कर लेंगे। लेकिन कहा करते थे महाराज कि यूसुफ नहीं जो मिले चन्द दरम से, कीमत जो दो आलम की है, बयाना है उसका। संसार के सुख भोग का और मोक्ष के आन्नद का दोनों का जो मूल्य है जो उस प्रेमी से सगाई करने के लिए advance में देना पड़ता है।

जो कीमत है, जो भोग और मोक्ष हैं, दोनों न्यौछावर करो पहले तब परमात्मा के सम्बन्ध की बातचीत होगी पीछे। है तो वह सदा-सदा से, छूटा कभी नहीं था, मिटा कभी नहीं था, लेकिन मुझे जो विस्मृति हो गई

थी, मैं भूल गई थी तो उस विस्मृति का नाश और नित्य सम्बन्धी की स्मृति की जागृति, इस विशेषता के लिए भोग और मोक्ष advance में देना पड़ता है, ऐसा सुना था। अपने लिए बहुत ही कठिन बात थी। खैर वह कथा कहने की जरूरत नहीं है।

जो कहना था असली में वह यह है कि एक बार हिम्मत करके उसकी महिमा, उसकी आत्मीयता उसकी कृपालुता को स्वीकार करके, अपने को इस पंथ पर डाल दिया जाए, तो उस महामहिम की महिमा ऐसी है कि जिन संकल्पों को त्यागने में हम असमर्थ थे, उनके त्यागने की शक्ति उन्होंने दे दी है और जिन संकल्पों की पूर्ति मेरे लिए हितकर थी सो अनायास ही उन्होंने पूरी करवा कर उसको खत्म की। ऐसा भी होता है। तो जब मैं अपना चित्र देखती पुराना तो महाराज को बताती कि ये ऐसी-ऐसी बातें हैं जो अपने साहस और प्रारब्ध के बल पर तो सम्भव ही नहीं थी, तो यह सब कैसे हो रहा है? क्यों हो रहा है? और क्यों और क्या और कैसे की आदत तो बहुत थी न। और परमात्मा में दोष देखने की उनकी आलोचना करने में भी एक शौक होता है आदमी को। आदमी अपने को बड़ा गौरवशाली समझता है। हमने भी समझा था पहले और कोई न समझता हो तो कोई बात नहीं। तो हम उनको कह देते कि स्वामी जी महाराज, अब ऐसा क्यों हो रहा है। यह अब क्या मुझे यह सब चाहिए? मुझे तो नहीं चाहिए। अब ऐसा क्यों हो रहा है तो स्वामी जी महाराज रामायण की कथा सुना देते कि देखो विभीषण जी आए थे अधीर हो करके रघुनाथ जी के समर्पित हो गए और उन्होंने लंकेश कहकर सम्बोधित कर दिया और समुद्र का जल मँगवा कर उनका राज्याभिषेक कर दिया। और बाद में जब बातचीत होने लगी तो विभीषण जी बड़े ज्ञानी पण्डित हो गए तो कहने लगे कि हे महाराज पहले तो कुछ वासना थी लेकिन अब आपकी प्रीति के रस में वह बह गई है, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए।

तो भगवान हँस दिए। हँसकर कहते हैं—जदापि सखा तोहि इच्छा नाहीं। यह नहीं कहा कि तुम्हारे भीतर कहीं दबी होगी, हमारी तरह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया। यह उस पर दोषारोपण नहीं किया, यह नहीं कहा तुम नहीं जानते तुम्हारे भीतर यह दोष है, सो नहीं कहा। जैसे ही विभीषण ने वर्णन किया वैसे ही स्वीकार कर लिया और कहते हैं जदपि सखा तोहि इच्छा नाहीं, मम दर्शन अमोघ जग माहीं, हे सखा, सच्ची बात है तुम्हारी इच्छा तो नहीं है लेकिन अब हमारी योजना है, तुमको करना ही पड़ेगा। हम जो दे रहे हैं सो लेना ही पड़ेगा। हम जो कह रहे हैं सो करो। तो बड़ी विचित्र बात है कुछ कहा ही नहीं जा सकता कि ईश्वर-विश्वास को जीवन में धारण करने पर इतना चमत्कार पूर्ण प्रभाव होता है मनुष्य के जीवन पर। कि वे क्या नहीं करते हैं आपको अपना प्रेम-पात्र बनाने के लिए और जब बन जाता है साधक उनका प्रेम पात्र तो उसकी ओर से आने वाले प्रेम रस को स्वीकार करके प्रभु अपने को कृतार्थ मानते हैं।

इतना ऊँचा यह जीवन इस वर्तमान में हो सकता है। और इस विलक्षणता को इस जीवन में अभिव्यक्त किए बिना ही साँस खत्म हो जाए तो बहुत बड़ा घाटा लगेगा। तो ऐसा न होने पाए। मैं फिर दोहरा दूँ आरम्भ की बात। मानव सेवा संघ सब भाई-बहनों को यह नहीं कहता कि तुम ईश्वर-विश्वासी बन जाओ। बिना बने रह सकते हो, तो बड़े आराम से रहो। अब स्वामी जी महाराज बहुत आनन्दित होकर कहते थे कि बड़ा अच्छा है सारी दुनिया ईश्वर-वाद को इन्कार कर दे, सबके सब ईश्वर को छोड़ दें कोई न विश्वास करें तो बहुत मजा आएगा। हम और वह दोनों मिलकर रहेंगे।

प्रवचन 16

सन्त की सद्भावना और अनन्त की कृपालुता हम सभी भाई-बहनों के साथ है। और उसी का यह शुभ परिणाम है कि हम सभी भाई-बहन अपने को साधक स्वीकार करके, साधक की स्वीकृति के अनुसार सत्संग के द्वारा अपने जीवन को पूर्ण करने के लिए उत्सुक हैं। थियोसिफिकल सोसाइटी के एक संत जिन्होंने अपना अनुभव लिखा था और यह शीर्षक था उसका रिटर्न जर्नी 'वापिसी यात्रा' इस नाम से उन्होंने निबन्ध लिखा अपने अनुभव के आधार पर। उसमें यह प्रकाशित किया, उसमें यह बताया कि जब कोई मनुष्य, जब कोई साधक घर वापिस जाने की यात्रा आरम्भ करता है तो उसके जीवन में एक आनन्द होता है। घर वापिस जाना आप समझ ही रहे होंगे। हम सब लोग यहाँ के वासी तो है नहीं। जी ! शरीर बना है भौतिक-तत्त्व से हम सब भाई-बहन बने हैं परमात्म-तत्त्व से। और यहाँ शरीर के साथ तादाम्य जोड़ने के कारण ममता में फँसे हुए है। ममता करते हुए भी, अपना मानते हुए भी यहाँ कोई रह नहीं पाता है और उस अनन्त तत्त्व को न जानते हुए भी उस ओर सभी आकर्षित रहते हैं। तो पूर्णता कब मिलती है, शांति कब मिलती है, आवागमन कब मिटता है, भय और पराधीनता कब मिटती है? जब हम जहाँ के हैं, वहाँ पहुँच जाएँ, जिसमें से निकले हैं उसमें समा जाएँ, यह भाषा तो समझ में आ गई न। तो रिटर्न जर्नी का यही अर्थ था कि वापिस जा रहे हैं। तो उन्होंने लिखा कि बड़ा आनन्द, बड़ा आनन्द छाया हुआ है चारों ओर। आज मैं पता नहीं कितने-कितने युगों के बाद, कितने-कितने वर्षों के बाद घर जा रहा हूँ। अपनी जगह पर पहुँचने जा रहा हूँ अपने उद्गम से मिलने जा रहा हूँ, अपने प्रियतम से मिलने जा रहा हूँ।

बड़ा आनन्द छाया हुआ है। तो लिखा उस सज्जन ने कि मुझको ऐसा लगता है कि जैसे धरती और आसमान भी मेरे साथ आनन्द मना रहे हैं। ऐसा लगता है मुझे कि मेरे रोम-रोम में आनन्द छाया है। और वृक्ष के जो पत्ते हैं, वे डोल डोलकर, हिल-हिल कर आपस में एक-दूसरे के साथ टकरा कर उसमें से जो आवाज निकलती है, वृक्ष के पत्ते आपस में हिलते हैं तो वे कहते हैं कि मालूम होता है कि सारी पृथ्वी ताली बजा-बजा कर मेरे साथ नाच रही है। इस हर्ष में कि आज एक आदमी भूला भटका हुआ संसार के वन में खोया हुआ अपने घर जा रहा है।

तो अभी मैं यहाँ आकर बैठी तो मेरे भीतर भी बड़ा आनन्द आया। क्या सोचकर कि आज इतनी-इतनी आत्माएँ, आज इतने-इतने हमारे भाई-बहन सब रिटर्न जर्नी के यात्री होकर के घर वापिस जाने के लिए अपने उस अनन्त उद्गम से मिलने के लिए उत्सुक होकर एक साथ यहाँ पर उपस्थित हुए हैं। तो ऐसे उन्नति की ओर उन्मुख होने वाले, अपने उद्गम से मिलने के लिए उत्सुक भाई-बहनों के जीवन का उत्कर्ष देख करके जैसे हमारे चारों ओर की प्रकृति की ओर से, प्रकृतिपति की ओर से ओर जिस परम कारुणिक संत, मानवता के संरक्षक हमारी पीड़ा से द्रवीभूत होकर हमारी उन्नति के लिए प्रेरणा देने वाले सन्त भी हमारे इस प्रयास से आनन्दित हो रहे हैं।

चारों और जैसे एक लहर दौड़ रही है भीतर से भी बाहर से भी, प्रकृति की ओर से भी, परमात्मा की ओर से भी और पिता तुल्य संत की ओर से भी। इतने-इतने मनुष्य जो हैं, भाई-बहन जो हैं प्रभु के प्यारे बालक जो हैं वे अपनी-अपनी उन्नति के लिए रिटर्न जर्नी की तैयारी कर रहे हैं। इस दृष्टि से आप सभी भाई-बहनों का हार्दिक स्वागत है और आपके साथ मिलकर मैं उस अनन्त से और संत से यह प्रार्थना कर रही हूँ कि शरीर का नाश होने से पहले यह शरीर इस धरती पर चलता फिरता रहे उससे

पहले हम सब लोग उस उद्‌गम से मिलकर सदा-सदा के लिए कृत-कृत्य हो जाएँ।

अब कैसे चलेंगे? कहाँ से यात्रा आरम्भ होगी? जो प्रकाश हमें दिया गया है उस प्रकाश में जीवन के इस दार्शनिक सत्य को हम स्वीकार कर लें कि शरीर बना है भौतिक तत्त्व से, और आप बने है अनन्त तत्त्व से। इस बात को स्वीकार करके ही इस यात्रा में हम लोगों को उत्साह मिलेगा, आनन्द बढ़ेगा, बल मिलेगा इसलिए पहले इस सत्य को स्वीकार कर लें। शरीर बना है भौतिक तत्त्वों से, तीनों ही शरीर। सामाजिक तत्त्वों की भौतिक सीमा है। शरीर बना है भौतिक तत्त्वों से और आप सभी भाई-बहन बने हैं अनन्त तत्त्वों से। तो महाराज जी के दो वाक्य मिले थे मुझे 2-4 दिन पहले, उसमें ऐसा लिखा था, कि वस्तुएँ खिंचती है धरती की ओर। भौतिक तत्त्वों से जो बना है वह भौतिक तत्त्वों की ओर आकर्षित होगा। तो वस्तु खिंचती है धरती की ओर और मनुष्य खिंचता है अनन्त की ओर। यह gravitation कहलाता है।

धरती में जो आकर्षण-शक्ति है उससे सब वस्तुएँ धरती की ओर खिंचती हैं और अनन्त में जो आकर्षण शक्ति है उस आकर्षण शक्ति से हम सब लोग उनकी, अनन्त की ओर खिंचते है। स्वभाव से क्या होना चाहिए? स्वभाव से यह होना चाहिए कि हमारा आपका सहज आकर्षण उस अनन्त परामात्मा की ओर होना चाहिए था। सच्ची बात तो यही है और होता भी यही है। यह तो अपनी भूल है कि हम वस्तुओं के साथ अपने को मिला देते हैं तो अपनी ही मिट्टी-पलीत होती है। ऐसा लगता है कि इस वस्तु के बिना कैसे रहेंगे, इस मकान के बिना कैसे रहेंगे, इस सामान के बिना कैसे रहेंगे, इस व्यक्ति के बिना कैसे रहेंगे तो यह अपनी दुर्दशा ही है। अपनी भूल का परिणाम है कि हम सब लोगों को वस्तुएँ इतनी आकर्षक लगती है, कि जो सच्ची बात है उसको हम कुछ देर के

लिए हटा देते हैं अपने सामने से। याद आती है तो उसको ढक देना चाहते हैं उसको दूर कर देना चाहते हैं, लेकिन सच्ची बात यह है कि मनुष्य की जो रचना है हमारा आपका जो यह अहं है, मैं-पन है अहं शब्द के भी बहुत से अर्थ होते हैं, तो उससे भी काम नहीं चलेगा मैं-पन सबसे स्पष्ट शब्द है। तो हमारा आपका मैं-पन जो हैं, इसकी रचना अनन्त तत्त्व से हुई है। यह एक ऐसा दार्शनिक सत्य है कि इसको स्वीकार नहीं करने पर एक कदम भी आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ने की बात नहीं होगी। तो यह पहली बात है सन्त की वाणी के अनुसार और मानव सेवा संघ के सिद्धान्त के अनुसार कि हम सभी भाई-बहनों को आगे की ओर बढ़ना है, अमर जीवन की ओर बढ़ना है, परम प्रेम से अपने को भरना है। तो यह काम जो है अपने जीवन का यह प्रोग्राम जो है वह कब सत्य होगा? जब हम दार्शनिक सत्य को अपने द्वारा अपने लिए स्वीकार करेंगे। अपने लिए स्वीकार करेंगे तो आपके भीतर बड़ा बल बढ़ेगा।

कौन-सी बात स्वीकार करें कि शरीर बना है भौतिक तत्त्वों से और मैं बना है अनन्त तत्त्व से। तो जो जिस धातु से बना है उसी की ओर आकर्षित होगा। ठीक है न? इसलिए मरणशील शरीर के संग रहते हुए और संसार के विविध रूप दृश्यों से अपना जी बहलाते हुए भी मनुष्य रह नहीं सकता आत्मा-परमात्मा, शांति, मुक्ति, स्वाधीनता की चर्चा किए बिना। नहीं रह सकता है, किसी न किसी रूप में उसे सोचना ही पड़ता है, कुछ न कुछ उसको करना ही पड़ता है, कहीं न कहीं वह टिकता ही है इस आधार को लेकर के। तो उसका कारण यही है कि हमारी जो रचना है वह अनन्त तत्त्व से हुई है तो उस आकर्षण से हम सभी उस ओर खिंचते हैं।

प्रारम्भिक दिनों की बात है जब मुझे संघ के दर्शन से परिचय हुआ तो भारतीय दर्शन का ज्ञान तो थोड़ा कम ही था। मामूली पुस्तकों के पढ़ने

का आधार था। पश्चिम दर्शन का कुछ पढ़ा हुआ था B.A. तक। Western Philosophy पढ़ा था मैंने, वह जो सामने आया तो मुझे ऐसा लगा कि मेरे पास इतना पुरुषार्थ होना चाहिए, इतना बल होना चाहिए, इतनी सामर्थ्य होनी ही चाहिए। जिसके आधार पर यह जो वर्तमान दशा है, शरीर के साथ इतना घुला मिला हुआ सा अस्तित्व मालूम होता था उन दिनों में, इतना घना तादात्म्य था शरीर के साथ, कि शरीर से अलग अपना कोई अस्तित्व है, ऐसा सोचने से ही लगता था कि पता नहीं यह कैसी बात है।

महाराज जी जब देहातीत जीवन की चर्चा करें तो मैं भीतर अपने आप सोचती हूँ कि पता नहीं स्वामी जी कौन-सी language बोलते हैं। हमारे लिए तो कोई अर्थ ही नहीं है देहातीत जीवन का, कुछ पता ही नहीं चले। तो उस समय मेरे भीतर एक बड़ी उथल-पुथल होती थी, कि कहाँ से मैं शक्ति लाऊँ कि शरीर के तादाम्य को तोड़कर, अशरीरी जीवन को पाकर के हमेशा का झंझट खत्म करूँ। तो भीतर ही भीतर व्यग्रता होती। और जब मेरे प्रयास विफल हो जाते बहुत गुस्सा होती थी कि शरीर का तादाम्य टूट जाए और बिना शरीर के मेरा स्वतन्त्र अस्तित्व है इस बात का मुझको पता चल जाए तो इसके लिए जितना मैं प्रयास करूँ, मेरे प्रयास में सफलता न मिले तो भीतर से एकदम से निराशा होने लगे, ठण्डी होने लग जाऊँ कि मैं अब क्या करूँ? जब सोचा था कि मुझे अविनाशी जीवन चाहिए तब आवश्यकता मालूम हुई कि कोई अनुभवी संत मिले तो मुझे मार्ग बताएँ तो अब मुझे संत मिल गए और मुझे मार्ग बता दिया। अब उन्होंने जो करना था सो तो उन्होंने कर दिया। मुझे जो करना है, उसमें पार नहीं जाऊँगी, तो क्या होगा फिर? तो एकदम से भीतर से अन्धकार छा जाए कि अब क्या होगा? अब क्या होगा? फिर जब मेरी इस दशा का महाराज जी ने अनुभव किया उनको बहुत जल्दी पता चल जाता था

कि किसी साधक के भीतर क्या हो रहा है ? तो उनको पता जब चला तो उन्होंने इतने सुन्दर-सुन्दर ढंग से मेरे आत्मविश्वास को पाला और उसने मुझे यह बताया कि कई तुम मंगलकारी प्रभु की मंगलकारिता पर विश्वास करो और जीवन के अविनाशी तत्त्व पर विश्वास करो। अपने पुरुषार्थ के बल पर जीवन पकड़ना चाहते हो और उसमें हारने से तुम निराश होते हो, यह बड़ी भारी भूल है। तो बड़ा आश्वासन मिला मुझे, धीरज मिला।

अपने भाई-बहनों को यह कथा मैं केवल इसलिए सुना रही हूँ कि सम्भव है कि हमारा जो यह समूह मेरे सामने जो विद्यमान है और भी किसी भाई-बहन को ऐसी घबराहट होती होगी कि हमारे करने से हो नहीं रहा है, फिर कैसे होगा ? तो आपकी सेवा में, संत की जीवनदायिनी वाणी मैं निवेदन कर रही हूँ कि बिल्कुल डरने की, घबराने की कोई बात नहीं है। क्यों नहीं है ? इसलिए कि मनुष्य की जो रचना है, उस रचना की सारी योजना ही इस ढंग की है कि आपको वह जीवन चाहिए तो उसका सारा इन्तजाम जीवन दाता की ओर से किया हुआ है। बस घबराने की, हार मानने की बात नहीं है। एक चर्चा हो गई। अब यह सब सुनकर मुझे क्या मालूम हुआ ? तो एक दिन अकेले बैठे-बैठे में अपने सम्बन्ध में सोच रहीं थी। परमात्मा के प्रति एक बड़ी कोमल भावना भीतर से उपज रही थी स्वामी जी महाराज की कृपा से, नहीं तो बचपन से तो मैं परमात्मा से बहुत नाराज थी। यह सन्त की कृपा थी। मेरी दशा देख करके नवनीत के समान कोमल हृदय संत का द्रवित होता रहता था और उनमें भीतर जो करुणा द्रवित होती थी उसके प्रभाव से मुझे बल मिलता था। तो यह उनकी करुणा का फल था। एक दिन मैं बैठे-बैठे सोच रही थी कि ऐसा कैसे हो सकता है। तो ध्यान में आया कि उस अनन्त तत्त्व को, उस अविनाशी तत्त्व को, उस परम रहस्यमय को, उस अनन्त माधुर्यवान को मैं किस मधुर भाव से पकड़ पाऊँगी। उस अनन्त ऐश्वर्यवान को मैं किस

बल से पकड़ पाऊँगी। तो अकेले में बैठकर मैं सोच रही थी। तो एकदम से स्वामी जी महाराज के वचन का अर्थ मेरे सामने आया कि अच्छा यह बात है। क्या बात है? तो मुझमें उद्‌गम से मिलने की जितनी आवश्यकता है, मुझ में अपने उत्थान के लिए जितना चाव है, वह तो बहुत ही सीमित है, और बहुत ही संदेहास्पद है निःसंदेह कहाँ है? तो इधर की हालत तो बहुत खराब है। परन्तु एक बड़ी जोरदार आशा है। वह क्या है? कि साधक के जीवन में उत्थान की जितनी लगन होती है, उसमें जितना, जिस मात्रा में उधर के लिए आकर्षण होता है। उससे कहीं अधिक तीव्र आकर्षण उस ओर से हमारे लिए आता है। बड़ा आनन्द आ गया। हमने कहा एक इतनी छोटी सी वस्तु है और एक असीम है किन्तु हम है उसी के जात के इसमें कोई शक नहीं। और दोनों में एक-दूसरे के लिए आकर्षण है। लेकिन जो अनन्त है उसका ज्यादा बल होगा कि हमारा होगा। वह ही खींच रहा है ज्यादा जोरदार तो फिर हम काहे को डरें। हमारी पकड़ अगर ढीली भी होगी तो इससे क्या होता है। उधर से जो आकर्षण-शक्ति आ रही है हर मनुष्य को उस अनन्त जीवन की ओर प्रेरित करने के लिए तो वह शक्ति बहुत ज़ोरदार है। बहुत ज़ोरदार है।

ग्वालियर में वे महारानी, जो उस समय थी अभी भी हैं विजया राजे सिंधिया, उन्होंने अपने पति के कैलाशवासी, स्वर्गवासी होने पर संत सम्मेलन बुलाया था। बुलाती हैं, अभी भी होता है। स्वामी जी महाराज के साथ मैं भी थी वहाँ, तो बातें सब हो रही थीं। तो मुझको महाराज जी ने कहा कि आप भी कुछ कह दीजिए। उस समय यह उधेड़-बुन हमारे भीतर बहुत चल रही थी कैसे होगा? कैसे होगा? कैसे होगा? जैसे ही ध्यान में आया तो लगा डरने की तो कोई बात ही नहीं है। मैं अपना हाल देखकर, अपनी सीमित भावना, सीमित विचार और अनेक प्रकार के विकारों से भरा हुआ जो अहं है, उस अहं में कितनी लगन है, कितनी सामर्थ्य है

कितना खिंचाव है यह देखकर धरती पर बैठी हूँ मैं हार मानकर के, यह तो बड़ी गलत बात है। संत की वाणी में कितना आश्वासन है कितना बल है वे तो कह रहे हैं, तुम क्यों सोच रही हो। तुम अपनी ओर मत देखो, अपनी असमर्थता अपनी दुर्बलता को मत देखो, उस अनन्त की महिमा को देखो। तो बड़ा आन्नद आ गया। हमने कहा कि बात तो बिल्कुल सही है। हम तो फँसे हैं, गिरे हैं, हाथ-पांव टूटे हैं कोई गम नहीं है। कोई साथ नहीं है। अपने विकारों का जो जाला बना हुआ है उसको काट करके उसमें से निकल करके वहाँ तक पहुँच सकें। लेकिन उस सर्वशक्तिमान की दृष्टि मुझ अकिंचन पर है। घना आकर्षण हम सब भाई-बहनों को खींच रहा है। तो बड़ा आनन्द आ गया, हर्ष हो गया, भय मिट गया और उसी समय महाराज जी ने खड़ा कर दिया वहाँ। फिर हम गए हमने सोचा मनुष्य की क्या सामर्थ्य है। जो देह से तादाम्य जोड़कर मिट्टी के साथ मिट्टी होकर बैठा है उसकी क्या हिम्मत? लेकिन एक बात है जिन्होंने मुझे बनाया, जिन्होंने अपना ही तत्त्व देकर निर्माण किया उन्होंने इस जीवन की planning इसकी योजना इतनी अच्छी बनाई है कि मेरे भीतर उत्थान के लिए एक छोटा-सा अंकुर पैदा होता है तो वे अपनी कृपा दृष्टि से पाल कर बड़ा बना लेते हैं। तो मैं बहुत खुश हो गई। तो गई वहाँ, थोड़ी-सी चर्चा हुई। संत के जीवन का उदाहरण रखा, महात्मा बुद्ध का। और फिर मुझे याद आ गया कि प्रभु की महिमा को याद करके मैंने एक वाक्य जो मैंने साहित्य में पड़ा था, उसे सुना दिया लोगों को। बोलते-बोलते हमने कहा कि ऐसे-ऐसे सत्संग से, इस प्रकार की संत वाणी से जीवन में कितनी क्रान्ति आती है, कितना उत्थान होता है आज मुझे कितना साहस मिला है और मैं निश्चय पूर्वक कह सकती हूँ कि हे मेरे प्यारे, हे मेरे प्रभु, हे मेरे प्रेमास्पद मैंने तेरी छाँह गही, तूने मेरी बाँह गही। सब लोग एकदम शांत हो गए। कितने हजार लोगों की मंडली थी सब

एकदम शांत हो गए। मैंने तेरी छाँह गही, मैं कहाँ पहुँच पाऊँ तुम्हारे पास, मैं तो तुम्हारी छाया को ही छू रही थी। मैंने तेरी छाँह गही, तूने मेरी बाँह गही। मुझे निश्चिन्त कर दिया मुझे निर्भय कर दिया कंधे पर से अपने पुरुषार्थ और साधना का सब भार उतार दिया। तो ऐसा जो एक अनुपम जीवन मिला है, हार मानकर बैठने के लिए नहीं मिला है, निरुत्साह होकर बैठने के लिए नहीं मिला है, भविष्य की आशा पर दिन काटने के लिए नहीं मिला है। यह जो एक अनुपम क्षण मिला है हम सब भाई-बहनों को। अनेक प्रकार की बाधाओं को काट-काट के किसी प्रकार से आप निकल सके हैं।

अनेक प्रकार की कठिनाइयों के सिर पर पाँव रखकर के बड़ा साहस करके आप निकल सके हैं। तो मैं यह नहीं कहती हूँ कि घर छोड़कर वृन्दावन आ जाने की बड़ी भारी विशेषता है। मैं इस बात की विशेषता मानती हूँ कि सत्संग का महत्त्व आपकी दृष्टि में इतना बढ़ गया कि दूसरी सारी कठिनाइयों को आपने नगण्य कर दिया। तो यात्रा वहाँ से यहाँ तक की हो गई इसका महत्त्व नहीं है लेकिन इस यात्रा के भीतर सत्संग की जो विशेषता आ गई उस विशेषता का महत्त्व अवश्य है। और वही एक बल है जो हम सभी भाई-बहनों को संत की वाणी का अनुसरण करने में समर्थ बनाएगा। तो आज एकादशी की तिथि है। मानव सेवा संघ के प्रार्दुभाव की तिथि और संत के विभु व्यापक होने की तिथि! इस तिथि के पुण्य पर्व पर हम सब लोग जीवन सम्बन्धी चर्चा करने के लिए बैठे हैं तो इस पहली बैठक में मैं यह निवेदन करना अच्छा समझ रही हूँ कि किसी के भीतर किसी प्रकार की दुर्बलता हो, तो उसकी परवाह मत करो। अगर आप दुर्बलता को मिटाना चाहेंगे तो अवश्य मिट जाएगी। क्यों? क्योंकि हमारे ही बल से उसको मिटाना होता तो मैं आप सब भाई-बहनों में सबसे पहले हार मानकर बैठ जाती। लेकिन हमारे बल से नहीं मिटता लेकिन

हमारा पुरुषार्थ क्या है? अपना पुरुषार्थ यह है कि उस सर्व सार्म्थ्यवान की उपस्थिति मान करके, अकेले में बैठ करके, अधीर होकर आप इस बात की आवश्यकता अनुभव करिए कि वह कौन-सी घड़ी होगी कि मैं अपने ही बुने जाले को काट कर पार कर जाऊँ। वह कौन-सी घड़ी होगी कि जो इस भ्रमात्मक स्वीकृति में से निकलकर, उस नित्य सम्बन्धी से मिलकर सदा-सदा के लिए आनन्दित हो जाएँगे। वह कौन-सी घड़ी होगी, वह कौन-सी घड़ी होगी, यह जीवन कब ऐसा होगा। आवश्यकता अनुभव करना मनुष्य का पुरुषार्थ है और उस आवश्यकता की पूर्ति कर देना प्रेमास्पद का सहज स्वभाव है। इतनी सी बात है।

अब ऐसा समय कब मिलेगा, ऐसी घड़ी कब आएगी। साँस-साँस का पता नहीं है। एक-एक दिन का ठिकाना नहीं है तो हम लोग शिथिलता में थोड़ा रहन-सहन का एक अच्छा सा ढंग बन गया है। और खाने-पीने का और बीमार होने से इलाज होने का एक प्रबन्ध बन गया और समाज में अच्छा आदमी कहलाने का एक अनुकूल संयोग बन गया है तो इसी मिथ्या सुख के आभास में उस अनमोल जीवन की घड़ी को चूक जाना बहुत बड़ा घाटा है। इसे सोच के देखो न। और कहाँ टिके है हम लोग। जिस शरीर में बड़ी घनी ममता है उस शरीर को रखने के लिए एक सुरक्षित स्थान मिल गया तो सोचने लग गए क्या नुकसान है 2-4 बरस और सुख से रह लो।

अरे भई, कब तक रह लोगे कुछ पता है? नहीं पता। जन-समाज के साथ अच्छे वचन बोल करके अच्छे व्यवहार करके कुछ ऐसी दृष्टियाँ अपने को प्राप्त हो गई हैं कि जो आदर और प्रेम से मेरी ओर देखती हैं तो इसके बल पर कब तक साँस लोगे? अनुकूलता बनी रहेगी? जी? नहीं रहेगी। यह जो आदर और प्रेम की दृष्टि है कि कुछ लोग मुझको अच्छी निगाह से देखते हैं तो यह दृष्टि का जो सुख है कि हमको अच्छा समझने वाले कुछ लोग मेरे पास है, तो यह सुख जो है वह देह के अभिमान

के पार पहुँचेगा? जी। यह देह का अभिमान ही है, जो सम्मान के सुख को महत्त्व दिलाता है, अपमान के दुःख को विशेष मानता है यह देह का अभिमान ही है, यह अहं का अभिमान ही है।

ये जो ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, ये संगी-साथी मिले इस दुनिया में आकर रहने के लिए ये विचारे भी सम्मान, अपमान को नहीं जानते हैं। हाथ-पाँव को क्या परवाह है? आँख नाक को क्या चिन्ता है कि कौन कैसे हमारी ओर देख रहा है, ये कभी नहीं जानते हैं। यह तो बिल्कुल मिथ्या बिल्कुल ही निरर्थक यह देह का अभिमान है, जिसके कारण से मुझको सम्मान प्रभावित करता है, अपमान प्रभावित करता है। तो इस सीमा के भीतर हम लोग कब तक रहेगे? कहाँ तक कुशल रहेगा बताओ? हमारे बचपन का सुना हुआ है भोजपुरी में कि स्त्रियाँ आपस में जो कहावत कहती है, मुहावरा जिसको कहते हैं, तो यह कहेंगी चोर की स्त्री कहाँ तक सगुन मनाएगी। कहावत कहा जाता है। चोर जाता है न चोरी करने के लिए तो लोग कहावत कहते हैं, कि चोर की स्त्री कहाँ तक सगुन मनाएगी। पति जा रहा है चोरी करने के लिए वह कहाँ तक सगुन मनाएगी क्योंकि वह तो मृत्यु के मुख में जा ही रहा है। ऐसा हाल है अपना। तो इन बाहरी आधारों पर जीने की सुविधा मिल गई, शरीर की सेवा की सुविधा मिल गई है, कुछ अच्छे वचन बोलने वाले साथी मिल गए हैं, इस अनुकूलता के आधार पर उस अनमोल तत्त्व से कब तक मैं वंचित रहना चाहती हूँ, यह प्रश्न हर भाई-बहन को अकेले में अपने से पूछना चाहिए। तो चेतना आएगी। सामर्थ्य की बात नहीं है। सामर्थ्य तो सामर्थ्यवान के पास बहुत है। वे तो अपनी ओर से तत्पर रहते हैं, कि कौन मेरा बच्चा असमर्थता की घड़ी में मुझको याद करेगा। उनके पास सामर्थ्य बहुत है। मेरे पास आता क्यों नहीं। तो मुझको इसका पता इसलिए नहीं चलता है कि जो बिना माँगे जो सामर्थ्य उन्होंने अपनी ओर से मुझे दे दी थी, उसी

का अभिमान ले करके मैंने अपने चारों ओर एक घेरा डाल लिया, सीमित हो गया। अब पता ही नहीं चलता है। उसी अभिमान के कारण से उस अनन्त सत्य की अनन्त सामर्थ्य से हम वंचित हो गए। और जिन्होंने अपने अहं के अभिमान को छोड़ दिया, जिनका सीधा direct connection उधर से लग जाता है उनको तो कभी असमर्थता का पता ही नहीं चलता है। थकावट कभी मालूम ही नहीं होती है। किसी बात के लिए कभी कुछ उनको ऐसा लगता ही नहीं है कि अब मुझसे नहीं होगा कि अब हम नहीं कर सकेंगे। ऐसा कुछ नहीं लगता है। अनन्त की ओर से उस अनन्त सामर्थ्यवान की ओर से जिनका सम्बन्ध जुट जाता है,

उनका तो कुछ नहीं बाकी रहता, सब पूरा ही पूरा है सब समय। तो देखिए संसार में व्यवहार करते समय, परस्पर एक-दूसरे से मिलते-जुलते समय जहाँ पर, जिस समय जो काम सामने आया, काम को करते समय और कार्य-क्षेत्र से अलग होकर अकेले बैठते समय, अगर इस बात की याद अपने को बनी है कि यह तो अपनी यात्रा है, यहाँ तो कहीं टिकाव नहीं है, ठहराव नहीं है चलो-चलो आगे बड़ो तो इस तरह की एक लगन लग जाए भीतर, तो ऐसा चमत्कार है मनुष्य के अहं रूपी अणु में, ऐसा चमत्कार है कि जैसे-जैसे हम सामाजिकता के लिए विमुख होने लगते हैं, जैसे-जैसे इधर के बंधनों को ढीला करते हैं वैसे-वैसे उस अनन्त के मधुर आकर्षण का प्रभाव अपने पर उनकी तरफ से होता है। मैंने बहुत ही कठिन घड़ी में उस मधुर आकर्षण का परिचय पाया है। कौन-सी कठिन घड़ी? बड़ी कठिन घड़ी थी मेरे लिए मेरी साधना की। मैं अपने को बड़ी जोर से समझा रही थी, मना रही थी अपने को किस बात के लिए कि यहाँ चारों ओर जो कुछ दिखाई देता है, यह जो कुछ दिख रहा है, उसमें कोई सार नहीं है। अब सार कहाँ है? वह तुमको दिखता तो नहीं है। लेकिन संत ने तुमको बताया है कि स्वामी जी महाराज ने जो कहा है, उसको सत्य

मानो और यह जो कुछ दिखाई दे रहा है इसको अस्वीकार करो। तो दो-ढाई महीने लग गए थे। महाराज जी के पास से सत्संग सुनकर वापिस चली गई थी, कार्यक्षेत्र में काम कर रही थी और दिन-रात इस बात की चेष्टा चल रही थी कि किसी तरह से मैं अपने को समझा लेती कि संत ने जो कहा है वह सत्य है और तुम्हें जो चारों ओर दिखाई दे रहा है वह मिथ्या है। तो समझाने से काम ही न बने। बुद्धि के आधार पर पकड़ने पर भी जीवन में उसका प्रभाव ही न हो। बहुत परेशानी, बड़ी कठिन घड़ी थी मेरी साधना के लिए। एक कदम भी आगे बढ़ने का कोई भरोसा नहीं था। क्यों? क्योंकि इस मूल बात को ही पकड़ न पाओ तो कैसे कदम आगे बढ़े? संसार के बंधन ढीले कैसे होंगे? क्या योगवाशिष्ठ-पाठ करने से बंधन ढीले होते हैं। वह तो नहीं होता है। उसमें तो हर Sentense में यह लिखाया हुआ है कि भई संसार मिथ्या है और परमात्मा सत्य है। कितने उदाहरण, कितने कथानक हमारे ऋषियों, मनीषियों ने अनुभवी संत जनों ने हमको समझाने के लिए रच लिया, लिख दिया, बता दिया, सुना दिया तो उस से तो होता नहीं है। तो मैं बहुत सच्चाई के साथ अपने आत्मीय भाई-बहनों की उत्साह-वृद्धि के लिए यह घटना सुना रही हूँ कि साधना की दृष्टि से बड़ी कठिन समस्या थी मेरी। बड़ा कठिन समय था मेरा।

यह उलझन पार ही न पाए तो आगे मैं क्या करूँ? ऐसी घड़ी में Staff room में बैठी थी। एक period पढ़ा कर आई थी। 2 घण्टे बाद फिर practical class लेने के लिए जाना था। और मैं Staffroom में easy chair में बाहर से देखने में बड़े आराम से बैठी थी और भीतर-भीतर हृदय-मंथन हो रहा था। क्या बताऊँ, यह तो यहाँ से कदम उठता ही नहीं है। यह तो महादलदल में, ऐसे लगे कि इतने-इतने पाँव मेरे कठिन दलदल में फँस रहे हैं। जितना निकालने की चेष्टा करूँ लगे कि और धँसे जा रहे

हैं। बड़ा संकट, तो ऐसी संकट की घड़ी में मैंने दुःखहारी हरि को याद किया हो, सो नहीं। वह तो आदत ही नहीं थी, स्वभाव ही नहीं था, अभी भी सहज से नहीं होता है। मैं याद करती हूँ सो बात नहीं थी। याद नहीं किया, मैंने मदद माँगी नहीं कि मैं अपनी ही दुर्बलता में डूबी जा रही हूँ मुझे उबारो। ऐसा कह कर मैंने पुकारा नहीं, लेकिन दुखी अवश्य हो रही थी कि अब कैसे होगा अब कैसे होगा। इतनी जोरदार शक्ति ! मेरे बिना बुलाए अदृश्य रूप से कि मैंने देखा भी नहीं, बिना देखे और बिना याद किए इतने जोर से और इतने घने और इतने मधुर आकर्षण ने मुझे खींचा, पार होने के बाद मुझे पता चला कि अच्छा कठिनाई तो पार हो गई, समस्या तो हल हो गई, दुविधा तो मिट गई, कैसे हुआ ? ऐसा कैसे हुआ तो याद आया कि अच्छा ! स्वामी जी महाराज कहते हैं कि आवश्यकता अनुभव करना तुम्हारा पुरुषार्थ है और उसकी पूर्ति करना उनके प्यारे का सहज स्वभाव है। तो एक बार सच्चाई से इस मार्ग पर कदम बढ़ाने की अभिलाषा तो जाग्रत हो जाए, फिर तो देर नहीं लगती है। फिर कोई बाधा नहीं है, कोई बाधा नहीं हो सकती। कितने जन्म हमने भूल में बिताए और कितनी शक्ति मैंने सुख-भोग की प्रवृत्ति में गँवाया। इसका हिसाब वे अनन्त सामर्थ्य वान रखते नहीं है। हिसाब तो वह रखे जिसके पास सीमित चीज हो किसको कितना देंगे, बाँटने के लिए हिसाब करेगा। अब इस आश्रम में अपने आए हुए सम्माननीय अतिथियों को सबको हम सुविधापूर्वक जगह नहीं देते हैं, नहीं दे पाते हैं क्या करें ? तो हिसाब बनाकर रखते हैं, चार्ट बना कर रखते हैं, सात दिन पहले से सोच कर रखते हैं कि इतने हमारे भाई-बहन आयेंगे उनको कहाँ रखेगे कैसे करेंगे। तो जिसके पास सीमित चीज हो वह हिसाब करता है। उस अनन्त परमात्मा की शक्ति की कोई सीमा नहीं, उनको हिसाब नहीं करना है। यह बच्चा मेरा कितने दिन भटका हुआ है कि कितने जन्म गँवा कर आ रहा है, कुछ नहीं सोचता है। जिसको

आवश्यकता है, जिसने आवश्यकता अनुभव किया उसी पर बरसा दिया। कितना? कोई सीमा नहीं? जितना तू ले सके, जितना तू ग्रहण कर सके, जितने में तेरा कल्याण हो जाए। इतनी मंगलकारिता है उस जीवनदाता में, और इतनी कृपालुता है उस जगत्पिता, जगत्जननी में, कि उस समय इसी क्षण में उसी रूप में वह विद्यमान भी है। जैसे और अनुभवी जनों ने अनुभव किया है, जैसे और अन्य संत महात्माओं ने अनुभव किया उसी प्रकार का उसी ढंग से व्यवहार करने के लिए अपनी उदारता, अपनी कृपालुता, अपनी सामर्थ्य बरसाने के लिए सदैव तत्पर है। और ऐसी अच्छी परिस्थिति फिर कब आएगी, सोचना ही नहीं चाहिए। वर्तमान में जो हम सब भाई-बहनों के सामने आ गया है, उसी का हार्दिक स्वागत करिए। उसका आदर करिए और उसकी कृपालुता का बल लेकर के अपने स्तर से ऊपर उठने के लिए हमेशा तत्पर रहिए। हम सब भाई-बहनों का कल्याण होगा, अवश्य होगा। संत जन भी सदैव मदद करने के लिए तैयार है, भगवान भी सदैव मदद करने के लिए तैयार है और केवल मेरा ही संकोच है कि इतनी देर हुई। तो अब संकोच छोड़ दिया जाए। काम बन जाएगा।

प्रवचन 17

उपस्थित संत महानुभाव, सत्संग-प्रेमी माताओ, बहनो और भाइयो !

मनुष्य के जीवन में शांति, मुक्ति और भक्ति की ओर विकास का जो क्रम है, उसमें सबसे आवश्यक बात मुझे यह मालूम होती है कि हमारे जीवन में उस ओर आगे बढ़ने का उत्साह होना चाहिए और कोई योग्यता अपेक्षित नहीं है। अभी जैसा कि हम लोगों ने संत-वाणी में सुना। वह क्या सुना कि यदि आप शांत होना, मुक्त होना, भक्त होना नहीं चाहते हैं तो फिर अपने लिए कोई उपाय नहीं है। लेकिन अगर आप ऐसा चाहते हैं, तो आप इस जीवन की आवश्यकता अनुभव करेंगे तो उसी से बड़ा भारी विकास आरम्भ हो जाएगा।

अब देखिए, अपने लोगों की एक दशा है जीवन में। क्या दशा है? कि आँखों से जो दिखाई देता है उसमें हम लोगों का विश्वास भी बन जाता है और उसके प्रति एक खिंचाव भी बन जाता है। विश्वास भी बनता है, खिंचाव भी बनता है। यद्यपि हम इस बात को जान रहे हैं केवल इन्द्रियों के आधार पर नहीं, बुद्धि के आधार पर भी हम लोग इस बात को अच्छी तरह से जान रहे हैं, कि जिन शरीरों के माध्यम से संसार में अनेक प्रकार का भोग किया मैंने, वह शरीर दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है और किसी न किसी क्षण में यह मेरा साथ छोड़ देगा। इस बात की जानकारी हम लोगों को है कि नहीं है? है। अब कठिनाई क्या हो जाती है? हम किसी मजहब के मानने वाले क्यों न हो, कठिनाई इतनी सी हो जाती है, कि देखा हुआ संसार एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं रहता है, प्रत्येक क्षण में बदलता रहता है फिर भी यही संसार अपने जीवन का आधार मालूम होता है। और जो परमात्मा एक क्षण के लिए भी किसी से अलग नहीं होता, वह परमात्मा अपने से बहुत दूर छिपा हुआ और अप्राप्य मालूम होता है। ऐसा लगता है कि परमात्मा को पाना बहुत कठिन बात है, बहुत

कठिन बात है। तो स्वामी जी महाराज ने मानव-जीवन की एक समस्या हमारे सामने रखी और यह कहा कि थोड़ा सोचकर देखो। तो तुम क्या सोचो? यह सोच करके देखो जो संसार आज तक किसी को प्राप्त नहीं हुआ, न होगा वहीं संसार तुमको सत्य मालूम होता है।

और जो परमात्मा कभी भी किसी से अलग नहीं होता है, न हुआ है, न होता है, न होगा वहीं परमात्मा अपने से बहुत दूर मालूम होता है। तो तन में विश्वास करना, धन में विश्वास करना कुटुम्बियों में विश्वास करना यह है विवेक-विरोधी लेकिन यह ही अपने को सत्य मालूम होता है, सहज मालूम होता है। और परमात्मा में विश्वास करना है सत्य और वह ही अपने को कठिन लगता है। तो जो आज तक किसी को मिल न सका, मुझे भी कुछ मिला नहीं लेकिन मिला हुआ-सा लगता है। और जो आज तक कभी अलग हुआ नहीं लेकिन वही अपने से बहुत दूर मालूम होता है। ऐसी दशा है कि नहीं है? जी है? जो चला गया वह मालूम होता है कि मेरा था। कितना बड़ा भ्रम है। जो पलक मारते ही आँखों के सामने से ओझल हो गया। एक माँ मुझसे बात कर रही थी प्रिय-वियोग की कथा कह रही थी। तो यह कह रही थी कि ऐसा लगा जैसे कि हम दोनों बैठकर अभी बात कर रहे हैं और किसी ने स्विच off कर दिया ऐसे झट से प्राणान्त हो गया तो यह मेरी आँखों देखी घटना है। इस अनिश्चित को मैंने अपने द्वारा अनुभव किया है फिर भी हम इस सत्य को मानने के लिए राजी नहीं है और उसी की अनुपस्थिति में सम्पूर्ण व्यक्तित्व जो है, अस्त-व्यस्त हो गया। इसका नाम है असत् का संग। अब अनुभवी जन क्या सलाह देते हैं? अनुभवी जन सलाह यह देते हैं कि जो तुम्हारी आँखों से ओझल हो गया, पलक मारते ही जिसके संयोग का अन्त हो गया और बड़ा ही दुःखद कठिन वियोग सामने आ गया उसको अवश्य ही तुम अपना मानना बन्द कर दो। पता चला गया न कि मेरा होकर रह न सका,

जो मेरा होकर रह न सका उसको मेरा कहना छोड़ दो। अच्छा, मेरा कहना छोड़ दें, लेकिन 20 बरस, 40 बरस एक साथ रह करके जो समय बिताया और अपने जीवन का सम्बल जिसको बनाया, उसकी याद कैसे मिटेगी? रह-रह कर उसकी याद आती है, इसका क्या करें? तो इसके बारे में यह बताया कि जब-जब मृतक प्राणी की याद आती है और उसके वियोग में अपने को सब कुछ निराधार लग रहा है तो उसकी याद आने पर, उसे अपना न मानते हुए भी, उसकी कल्याण-कामना रखो, उसके लिए भगवान से प्रार्थना करो हे प्रभु मुझे भी मोह-मुक्त कीजिए, उस दिवंगत आत्मा को भी मोह-मुक्त कीजिए। इसको अपनी शांतिमय गोद में स्थान दीजिए। मैंने बड़ी भूल की कि बनने-बिगड़ने वाले को अपना करके स्वीकार किया था। इस स्वीकृति से हम दोनों मोह के बंधन के जकड़ गए। हे परमात्मा, हम दोनों को मोह के बंधन से मुक्त कीजिए। मुझे भी शांति दीजिए उसे भी शांति दीजिए। जहाँ रहे, आनन्द से रहे, जहाँ रहे, शांति में रहे। ऐसा जब-जब उस बिछड़े हुए प्रिय-जन की याद आती है तब-तब उनके कल्याण के लिए प्रार्थना निकलनी चाहिए हृदय से। इसका फल क्या होगा? इसका फल यह होगा कि जब अपना जीवन मोह-मुक्त हो जाएगा तो मृतक प्राणी का जीवन भी मोह-मुक्त हो जाएगा। जब अपने को शांति मिल जाएगी तो बिछड़े हुए को भी शांति मिल जाएगी। यह अनुभवी जनों का अनुभव है। यह जीवन का विज्ञान है। इसी के अनुसरण से कल्याण होता है।

अब दूसरा पक्ष लिया जाए। जो सदा-सदा से अपना है, जिसने कभी मेरा साथ छोड़ा ही नहीं, उसको में अपना मानूँ। बड़ी सच्ची बात है, बड़ी सीधी बात है, बहुत आवश्यक बात है। अब कठिनाई क्या होती है कि हम लोग जब उस बिना देखे, बिना जाने सर्वव्यापी परमात्मा को अपना मानना आरम्भ करते हैं, गुरु की वाणी पर विश्वास करके या वेद-शास्त्र के वाक्यों में विश्वास करके। अगर हम उसको मानने का साहस करते

हैं तो भीतर से बड़ा निराधार लगता है, कि देखा है नहीं, कहीं कुछ पता ही नहीं चलता है कि वह कहाँ है और कैसा है क्या करता हैं, वह मिलेगा कि नहीं मिलेगा। तो मानना भी चाहते हैं हम उनको और माना जाता भी नहीं है। डर लगता रहता है, संदेह होता रहता है कि क्या करें, कैसे माने, तो समय-समय पर बैठ करके अकेले में भी मैंने सोचा और स्वामी जी महाराज से भी बहुत बातचीत की तो मुझको एक खास बात मालूम हुई। और खास बात यह मालूम हुई कि ईश्वर में विश्वास करने का प्रश्न जब सामने आए तो मत पूछो कि वह कहाँ है और कैसा है और क्या करेगा। क्यों? क्योंकि ऐसा जब हम पूछेंगे, भीतर में तर्क और बुद्धि को प्रश्रय देगे तो कभी भी मान नहीं पाएँगे। इसलिए बुद्धि मत लगाओ। दूसरी बात क्या है जब मेरे सामने प्रश्न आया तो मैंने यह सोचा कि अच्छा हुआ भगवान देखे हुए जगत् में सामने नहीं आया।

क्यों, क्योंकि जितना जो कुछ मैंने देखा, सुना वह सब मेरी मुट्ठी में से निकल गया। जितना मैंने देखा, सुना, समझा, पकड़ने की कोशिश की वह सब मेरे हाथ में से निकल गया। बड़ा परिश्रम करके पढ़ना-लिखना किया, बड़ा बढ़िया result पाया, बड़ी अच्छी नौकरी मिली, बड़ा बढ़िया पद मिला। मैं अभी हूँ और वृद्धावस्था आने के कारण से मेरी आवश्यकताएँ बढ़ गईं अब किसी की सहायता चाहिए। अब अधिक आराम चाहिए। अब शरीर को अधिक सँभाल चाहिए। तो जब शरीरों की आवश्यकता बढ़ गई तब आवश्यकता-पूर्ति की सामग्री जो संसार ने दी थी वह छूट गई। मजा आ गया न। वृद्धावस्था आई अब ज्यादा सहारा चाहिए। तो संसार ने क्या किया? युवावस्था में जो सब सहारे दिए थे वह सब वापिस ले लिया। नहीं-नहीं अब तुम हमारे काम के नहीं हो, अब कुर्सी छोड़ दो, अब यह धन तुम छोड़ दो अब इस कुर्सी पर हम किसी युवावस्था वाले को बैठाएँगे और ये धन-सम्पत्ति, सम्मान, सुविधा तो हम

उसको देंगे, अब तुम हमारे काम के लायक नहीं रहे, अब तुम जाओ। क्या मुसीबत, अब क्या करे ? तो यह सब छूटता गया। सब छूटता गया और जो थोड़ा बहुत शेष बच गया है वह भी छूट जाएगा। इन बातों को हम सब लोग अच्छी तरह से देख रहे हैं, जान रहे हैं। तो मेरे सामने जब प्रश्न आया तो मैंने भला मनाया। हमने कहा बहुत अच्छा हुआ कि मेरे परमात्मा इस देखे हुए जगत् का दृश्य बन कर मेरे सामने नहीं आए। अच्छा किया उन्होंने, अगर दृश्य बनकर आ जाते तो जैसे सब दृश्य मेरी आँखों के सामने से भाग रहे हैं ऐसे वे भी भाग जाते, फिर तो मैं अकेली रह जाती। तब तो मेरा फिर वही हाल रह जाता कि अब किसका सहारा पकड़े ? अब कौन ऐसा है अचल आधार, कि जिसको ले करके मैं सदा-सदा के लिए निश्चित हो जाती ?

तो स्वामी जी महाराज के सिखाने, समझाने से थोड़ा साहस तो आया था और उसी साहस के बल पर मैंने यह सोच लिया कि अच्छा है भगवान आप छिप करके रहे, आप अदृश्य हो करके रहे, आप देखने-सुनने में नहीं आए। तो मेरे लिए एक रास्ता बच गया। क्या रास्ता बच गया ? जो देखने सुनने में नहीं आता है और देखे हुए दृश्य के समान मेरी आँखों से ओझल नहीं हो सकता है लेकिन सदा-सदा से है। स्वामी जी महाराज कह रहे हैं कि है, संत कबीर ने कहा कि है, मीरा जी ने कहा कि है, क्राइस्ट ईसा मसीह ने कहा कि है, पैगम्बर मौहम्मद ने कहा कि है। तो मैं क्या करूँ ? मैं जानती तो नहीं हूँ लेकिन इन सब संत महापुरुषों ने कहा कि है तो मेरे लिए एक Chance बच गया है कि वह परमात्मा जो देखने, सुनने, समझने में नहीं आता है लेकिन जब इतने सन्त महापुरुष कह रहे हैं कि है, वेद-शास्त्र में लिखा है कि है तो एक बार उसको मान करके देखो कि क्या होता है ? यह श्रद्धा-भक्ति की बात नहीं है, यह हारे हुए जीवन की कथा है। संसार के सब दृश्य चलचित्र की भाँति आँखों के सामने आ रहे

हैं और निकल जा रहे हैं और जिन आँखों से मैंने संसार को देखना आरम्भ किया था, वे आँखें भी मेरा साथ छोड़ रही है। जी, छोड़ रही है न?

एक दिन ऐसा था कि रात्रि के समय बहुत ही सूक्ष्म-सूक्ष्म Drawing-painting मैं कर लेती थी और आज का दिन है कि खुले प्रकाश में दिन के समय 2-4 चिट्ठियाँ लिख दूँ, तो सिर दर्द से परेशान हो जाती हूँ। तो जिन आँखों से मैंने देखे हुए संसार का सुख लिया था वह देखा हुआ संसार तो धीरे-धीरे खिसक ही गया, जिन आँखों से देखा करती थी वह आँखें भी छोड़ रही हैं। तो भला हुआ, परमात्मा देखे हुए में शामिल नहीं रहा। इसलिए डरिए मत, सोचिए मत नहीं दिखाई देता है तो उसको कैसे माने। मान लीजिए मेरी तरह झख मारकर मान लो अथवा अपने हृदय की श्रद्धा, भक्ति प्रेम से आनन्द से मान लो। किसी भी तरह से मानो उसको मानना पड़ेगा जरूर और अगर उसको नहीं मानेंगे हम, फिर हमारे जीवन में मानने का जो स्वभाव है, वह कुछ नहीं रह जाएगा, तो मानों। अब फल क्या हुआ? तो बड़ा अद्‌भुत फल है? परमात्मा देखने में नहीं आया, उसने आकर मेरे सामने खड़े होकर कभी कहा नहीं कि मैं परमात्मा हूँ और मुझको मान लो, तो तुम्हारा दुःख मिट जाएगा। ऐसा उसने नहीं कहा लेकिन संत महापुरुषों की वाणी सुनकर, गुरु के वाक्य का आधार लेकर जिन साधकों ने बिना देखे, बिना जाने परमात्मा को माना, उनके जीवन में बड़ा परिवर्तन हो गया। क्या परिवर्तन हो गया? कि अब बड़ी विचित्र बात हो गई। ऐसा नहीं कि धनुष धारी बन कर सामने खड़ा हो गया कि मुरली मनोहर बनकर सामने खड़ा हो गया सो नहीं। बड़ा भारी परिवर्तन उसके जीवन में आया कि अब अपने को निश्चिंत और निर्भय करने के लिए आँखें खोल कर संसार की ओर देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्या हो गया?

कि शांत हो रहो, चुप रहो, खुली आँखों से जगत् को देखो अथवा बन्द आँखों से अपने भीतर समा जाओ। वह जो नित्य-निरन्तर अपने ही में विद्यमान रहने वाला परमात्मा है, वह अपनी उपस्थिति का आभास तुमको दे देगा। देखो, तुम्हारे गुरु ने कहा था कि तुम्हारा परमात्मा तुम में विद्यमान है। तो अपने गुरु की वाणी का विश्वास किया तुमने। अब देखो तुम्हारे गुरु ने जो कहा था उसी के अनुसार मैं तुम्हारे साथ विद्यमान हूँ।

इतना प्रत्यक्ष और इतना जोरदार आश्वासन उस परमात्मा की ओर से विश्वासी साधकों को मिल जाता है। अनाथ-पन का दुःख सदा के लिए खत्म हो जाता है। याद रखने में कभी भी ईश्वर-विश्वासी को ऐसा नहीं लगता कि मैं अकेला हूँ, मैं अनाथ हूँ ऐसा कभी नहीं लगता है। कभी भी अपने लिए अन्य सहारे ढूँढने की आवश्यकता नहीं रह जाती। मैं क्या करूँ? मैं कैसे रहूँ? मैं कहाँ जाऊँ, यह सब उसको नहीं सोचना पड़ता। क्यों नहीं सोचना पड़ता? कि प्रत्यक्ष रूप में परमात्मा उस को कब मिलेगे, वह तो परमात्मा जाने। लेकिन अज्ञात रूप से परमात्मा की विभूतियाँ उस विश्वासी साधक के जीवन में इस प्रकार से भरने लग जाती है, कि वह समझता नहीं है कि क्या हो रहा है। लेकिन आँखें बन्द करके अकेले में एकान्त में उसे अपने में ऐसा एक विशेष बल मालूम होता है ऐसी एक विशेष सरसता मालूम होती है कि वह उसी में मस्त रहने लग जाता है। तो मेरा ऐसा विश्वास बन गया कि आदमी को अपने आप में जब तक वह बल और वह विश्वास और वह रस नहीं मिलेगा, तब तक उसको दुनिया के किसी आधार पर निश्चितता और शांति मिल जाए अथवा वियोग-जनित पीड़ा खत्म हो जाए, यह कभी सम्भव नहीं है। भले कुछ काम करके अपने को बहला लो, भले कुछ स्थान का परिवर्तन करके अपने को बहलाने की कोशिश करो, भले बुद्धि के बल पर बौद्धिक और मानसिक योग्यता के बल पर अपने को धीरज देने की कोशिश करो कुछ भी करो

मोह-जनित पीड़ा जो है, प्रिय-वियोग का दुःख जो है वह परमात्मा के प्रेम रस से ही मिटता है और किसी प्रकार से मिट नहीं सकता, जीवन भर नहीं सकता। बुद्धि का जो बल है वहाँ तक पहुँचता नहीं है। मैंने भी बुद्धि का बड़ा सहारा पकड़ा था। अपनी बुद्धिमता का बहुत बल था मुझको और समझा बुझा कर मैं अपने को ठीक कर लूँगी, इसमें मेरा भी बड़ा विश्वास था किसी समय। लेकिन समझाने-बुझाने पर भी काम नहीं बना, सबसे उच्च शिक्षा में सबसे आखिरी परीक्षा दे करके मैं विश्व विद्यालय के मुख्य द्वार से बाहर निकलने लगी तो मेरा हृदय हाहाकार करने लगा। मुझे भीतर से यह आवाज आने लगी कि 14 वर्षों का समय अध्ययन में लगा कर देह को धुन डाला मैंने। साहित्य के लिए विज्ञान के लिए और दर्शन के लिए बहुत कुछ किया और आखिर में प्रायोगिक परीक्षा देकर बाहर निकलने लगी तो हृदय रोने लगा। क्या मालूम हुआ? कि 14 वर्ष का सारा परिश्रम बेकार गया। क्यों? क्योंकि बौद्धिक विकास से जीवन का अभाव नहीं मिटता है। भीतर सब सूना, सब अंधकार। तो पटना University का जो Main gate है उससे मैं बाहर निकल रही थी तो एक बार मैंने पीछे फिर करके विश्वविद्यालय को प्रणाम किया और मैंने कहा कि तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुम तो अपनी जगह ठीक हो भई, आबाद रहो। मुझे जो चाहिए था सो नहीं मिला। आ गई।

बौद्धिक विकास से जीवन का अभाव नहीं मिटता है। बौद्धिक विकास से सदा-सदा का असल आधार आदमी को नहीं मिलता है। क्योंकि बौद्धिक तत्त्व जो है वह भौतिक तत्त्व है। ईश्वर-विश्वास के बल पर जब अलौकिक, ईश्वरीय विभूतियाँ का प्राकट्य अहं रूपी अणु में से होने लगता है तब अपनी असमर्थता का नाश होता है, चिंता और भय का नाश होता है, नीरसता का नाश होता है तब उस रस को लेकर के व्यक्ति सदा-सदा के लिए निश्चिंत और निर्भय होता है।

बिल्कुल सच्ची बात है और हम सब भाई-बहनों को जीवन के उस मौलिक सत्य में आस्था रखनी चाहिए। नहीं तो आप देखिए ऊँचे से ऊँचे सुख की घड़ियों को भी आपने अनुभव किया है। हरएक भाई-बहन को प्रकृति के मंगलमय विधान से जीवन में अनेक बार अच्छे-अच्छे सुख के अवसर आते हैं और आप ही आकर सुनाते हैं कि उन सुख की घड़ियों में भी अपने को सूझता है कि भाई यह तो आने-जाने वाला है, इसमें तो जीवन नहीं है। तो सदा-सदा के लिए रहने वाला जो है उसको पकड़ना है, यह सूझता है। यह चेतना मानव मात्र को उस परमात्मा ने दी है, इसलिए सूझता है आदमी को। और मैंने तो बड़ी-बड़ी प्रतिकूल घड़ियों में इस चेतना को अपने को थामते हुए देखा है, पाया है। इस आधार पर अपने आत्मीय भाई-बहनों की सेवा में मैं यह निवेदन कर रही हूँ कि सुख-भरी परिस्थिति है तो क्या और दु:खभरी परिस्थिति है तो क्या? परिस्थितियों को सत्य मत मानो। बड़ा धोखा होगा, अवसर निकल जाएगा, परिस्थितियाँ संसार की संसार में रह जाएँगी और जब सब कुछ छूटने लगेगा तो अपने को अकेला और निराधार पा करके बड़ी बुरी दशा हो जाएगी।

परमात्मा ने अथवा हमारे रचयिता ने जिन्होंने हम लोगों को बनाया है वह इस दुनिया में आ करके निराधार होकर के हाय-हाय करके जीने के लिए और हाय-हाय करके मरने के लिए नहीं बनाया है। जो ईश्वरत्व जो ईश्वरीय विभूतियाँ सामर्थ्य के रूप में, शांति के रूप में, ज्ञान के प्रकाश के रूप में और प्रेम के रस के रूप में हमारे ही अहं रूपी अणु में से प्रकट होने वाली हैं, उन आलौकिक तत्त्वों को प्रकट होने देना हमारा-आपका वर्तमान का परम पुरुषार्थ है। कभी-कभी तो इतना आनन्द आ जाता है मुझे, किसी-किसी सन्त के चरित्र को देख करके कि कैसे सीमित व्यक्तित्व के भीतर जब ईश्वरीय विभूतियाँ प्रकट होने लगती है तो इतनी सामर्थ्य आ जाती है कि साधक स्वयं नही सोच सकता है यह सब कैसे हुआ? यह सब कहाँ से आया? यह सब किसने दिया?

रमण महर्षि जी के जीवन की एक घटना मैंने सुनी। वह तो अहं-शून्य अनन्त तत्त्व से मिले हुए महात्मा थे। बैठे रहते थे गुमसुम, चुपचाप। बोलते बहुत कम थे। किसी दुखी परिवार ने आ करके सुनाया। दुखी परिवार सन्तों के पास आता है तो अपना दुखड़ा ही सुनाना पसंद करता है। स्वामी जी महाराज के पास कोई-कोई आ करके सुनाता, महाराज यह झंझट हो गया यह झंझट हो गया। कही आर्थिक संकट है, कहीं लड़कियों के विवाह-शादी का झंझट है, कहीं कुछ, कहीं कुछ। तो पहले तो महाराज खूब हँसते और कहते, भले आदमी, साधु संत के पास जा करके मुक्ति, भक्ति माँगनी चाहिए कि फकीरों के पास आ करके धन माँगते हो। तो पहले तो खूब हँस देते कि तुमने भी क्या सोचा है? अरे नंगे फकीर के पास आ करके तुम धन की बात करते हो। क्या बात है भई? ऐसा कह कर हँस देते। भई साधु-सन्तों के पास आओ तो मुक्ति, भक्ति की चर्चा करो वहाँ आकर भी तुम वही दुनिया का बखेड़ा ले आए हमारे पास। रमण महर्षि के पास, मैंने सुना उनके पास भी ऐसे ही लोग आते थे दुखड़ा सुनाने के लिए। तो एक पति-पत्नी आए उनकी 12 वर्ष की लड़की बीमार थी उसकी हालत बहुत खराब थी। सूचना आई, कि उसकी हाल बहुत खराब है, जल्दी वापिस आओ। तो माता-पिता ने संत को प्रणाम किया और कहा कि महाराज ऐसी-ऐसी हालत है। तो सब लोग जानते थे कि इनका आशीर्वाद हो जाए तो ठीक हो जाए यह सब बहुत तरह की बातें रहती हैं। तो सुन लिया, कोई उत्तर नहीं दिया। वे लोग तो व्याकुल है वापिस जाने के लिए, जल्दी जाएँ लड़की की हालत खराब है, जाकर देखें तो फिर दोहरा कर कहा कि ऐसी-ऐसी हालत है। फिर महर्षि ने कोई उत्तर नहीं दिया और उनकी व्याकुलता और बढ़ती जा रही है। तो आस-पास में बैठे हुए संत के जो भक्त होते हैं वह कुछ अपना तीन-पाँच लगाते हैं। तो एक उनका भक्त आगे बढ़कर कहने लगा महर्षि, इन लोगों

का ऐसा-ऐसा हाल है इन्होंने आपके सामने अपना दु:ख सुनाया है मतलब कि कुछ उत्तर दीजिए। कह दीजिए कि लड़की अच्छी हो जाएगी और क्या? इतना खुल कर उन्होंने नहीं कहा। फिर से याद दिलाई। तो महर्षि ने जब उनके मस्तिष्क पर इतना जोर डाला गया, तब उनके ध्यान में आया तब उन्होंने क्या कहा, कि महर्षि कुछ नहीं जानता है। महर्षि कुछ नहीं कर सकता है। तूने सुना दिया सुनने वाले ने सुन लिया। उसको जो करना होगा करेगा। महर्षि कुछ नहीं जानता है।

अहं-शून्य, अपने में अपना करके कुछ है नहीं। तो जिन संतों का जीवन अहंशून्य हो जाता है उनकी शक्ति परमात्मा की शक्ति से जुट जाती है, तो उधर उनका प्रकाश सीमित व्यक्तित्व के माध्यम से प्रकाशित होता रहता है। उन्हीं का अनन्त प्रेम प्रभु के विश्वासी भक्तों के व्यक्तित्व के माध्यम में से संसार में प्रसारित होता रहता है। तो प्रभु का अनन्त ज्ञान, प्रभु का अनन्त प्रेम, प्रभु की अनन्त सामर्थ्य, प्रभु की अनन्त शांति यह सब भक्तों और संतों के व्यक्तित्व के माध्यम से संसार में प्रसारित होता रहता है, बढ़ता रहता है, बँटता रहता है, फैलता रहता है। स्वयं वे आन्नदित रहते हैं और उनके नजदीक आने वाले उनके सम्पर्क में आने वालों को भी आनन्द की लहरियों का स्पर्श होता रहता है, जो जीवन को बदलता रहता है।

स्वामी जी महाराज कभी-कभी व्याख्यान के द्वारा, जो सत्संग की विधि है, कभी-कभी उनका जी बड़ा फट जाता, खिन्न हो जाता तो कहते देवकी जी, आज उपदेष्टा गुरु की आवश्यकता नहीं है। संसार में उपदेष्टा गुरु की जरूरत नहीं है। आदमी इतना दुर्बल हो चुका है। अपनी ही भूलों से, आदमी आज इतना शक्तिहीन हो चुका है कि आज तो ऐसा गुरु चाहिए, प्रभु के प्रकाश और उस अनन्त के प्रेम से भरा हुआ ऐसा गुरु चाहिए कि जिसके सम्पर्क में आने से ही साधकों की सब दुर्बलताओं का नाश हो

जाए। आज उपदेष्टा गुरु की जरूरत नहीं है। क्यों? क्योंकि उपदेश को सुनकर, सच्ची बातों को सुनकर उसको ग्रहण कर लेना और उस पर आचरण कर लेना इस प्रकार की सामर्थ्य ही आज भाई-बहनों की कम हो गई, घट गई! तो मैं कभी-कभी बोलती। महाराज जी जब बैठे होते तो और भी निर्भीक होकर के उत्साह में भरके उनकी उपस्थिति से अपने जीवन का स्तर कुछ ज्यादा ऊँचा लगता था। जितना निर्विकार नहीं हो गया है, उससे अधिक र्निविकारिता मालूम होती थी। उनके पास बैठे रहो तो ऐसा लगता था कि मेरी तो सब समस्या खत्म हो गई। ऐसा लगता था।

मैं अलौकिक जीवन में हूँ, ऐसा अपने को भास होता रहता था। तो बड़ी जोर से ओर जोश में आ करके स्वामी जी की बातों को मैं दोहराया करती और दोहराते-दोहराते कभी-कभी श्रोताओं पर दृष्टि जाती जैसे कि Class में पढ़ाने की आदत तो पढ़ाते समय लड़कियों की आँखें हम देखा करते थे कि देखें ये लोग समझ रही हैं कि नहीं, देखें ये लोग पकड़ रही हैं कि नहीं। शुरु-शुरु में ऐसे ही सत्संग में भी बैठ करके मैं श्रोताओं को देखा करती। कि देखे यह मैं इतनी ऊँची-ऊँची बात बोल रही हूँ, सुनने वालों की पकड़ में आती है कि नहीं। और जब ऐसा लगता कि यह सारी चर्चा तो ऊपर-ऊपर हवा में जा रही हैं, श्रोताओं को पकड़ नहीं आ रही हैं, उनकी आँखों में चमक नहीं दिखाई देती है, उनकी मुखाकृति में प्रसन्नता का expression नहीं आ रहा है ऐसा लगता तो मेरा उत्साह थोड़ा-सा ठण्डा हो जाता है।

तो बाद में मैं सुनाती महाराज से। तो महाराज जी कहते तुम ऐसा क्यों करती हो। देखकर क्यों बोलती हो। मैं तो नहीं देख कर बोलता हूँ? तुम श्रोताओं को देखकरके क्यों बोलती हो? और पीठ ठोक कर कहते बेटा बोले ही जाओ जितने ऊँचे Standard से बोलने का तुम्हारा जी हो सब बोल जाओ। डरने की कोई बात नहीं है। जो उसका अधिकारी

है, वह तो ग्रहण कर ही लेगा, वह तो सँभाल ही लेगा और फिर कहते-कहते कह जाते कि देवकी जी, आज उपदेष्टा गुरु की आवश्यकता नहीं है संसार में। आदमी इतना निर्बल हो गया है, इतना थकित हो गया है कि आज तो वैसा गुरु चाहिए, जिसके सम्पर्क मात्र से श्रोताओं की सब निर्बलता खत्म हो जाए। ऐसा होता है। नहीं होता है, सो बात नहीं है।

दक्षिण भारत में चिनम्मा करके एक बहुत ही विवेकवती महिला, जब शरीरों की असंगता में मस्त हो गई तो न घर-बाहर का ध्यान रहा न कपड़ों का ध्यान रहा, न शरीर का ध्यान रहा, नंग धड़ंग जंगल में पड़ी रहती थी। दक्षिण के एक संत उनसे मिले। मानव सेवा संघ का बहुत काम किया था उन्होंने हैदराबाद में। वे संत मिले तो कह दिया उन्होंने जाओ-जाओ, उत्तर भारतवर्ष के एक प्रज्ञाचक्षु संत जब तुम्हें मिलेंगे, तब तुम्हारा उद्धार होगा। तो वे बेचारे प्रतीक्षा में थे कि उत्तर भारतवर्ष से प्रज्ञाचक्षु संत आएँगे तो मेरा उद्धार होगा। जब स्वामी जी महाराज मिले तो बड़े आनन्दित हो गए, कहने लगे कि मेरे गुरु ने आपकी शरणागति हमको दी थी, महाराज अब हमको सँभालिए। तो वे बताते थे कि चिनम्मा जंगल में नंग धड़ंग पड़ी रहती थी, कुछ पता ही नहीं है कब दिन हो रहा है, कब रात हो रही है। शरीर और संसार से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अपनी निजानन्द में मस्त है। तो लोग जब मिलने के लिए जाते तो पुरुष लोग तो दूर-दूर बैठ जाते क्योंकि स्त्री-शरीर यूँ ही पड़ा है जंगल में जमीन पर, तो दूर-दूर बैठ जाते। स्त्रियाँ जाती तो अपने पास से कोई चादर-वादर कपड़ा-वपड़ा लेकर जाती। उनके बदन पर डाल देतीं और अपनी ही मस्ती में कभी भी उठकर बैठ गईं तो एकदम से उनसे मिलने के लिए, बात के लिए जो लोग गए होते, सबमें बड़ा हर्ष फैल जाता और तभी उनके मुख से निकलता—क्यों आया है? बोल तेरा क्या प्रश्न है? तो अनुभवी, उनके पास जाने वाले अनुभव करने वाले लोगों ने बताया कि माँ के मुँह से

निकलता कि बोल तेरा क्या प्रश्न है? उनका पूछना और साधक के सब प्रश्नों का हल होना एक साथ। जहाँ उन्होंने पूछा कि बोल तेरा क्या दु:ख है, तो जो भी दु:ख है सब खत्म। ऐसा होता है। तो मैं यह निवेदन कर रही थी कि बाहरी व्यवस्था के आधार पर हम व्यक्तित्व को सँभाल लेगे यह भूल है, मानसिक योग्यता के आधार पर हम जीवन को सँभाल लेंगे यह भूल है। जब तक संसार में पद-मर्यादा सुख-सुविधा संगी-साथी ये सब रहेगे तब तक उस अविनाशी जीवन की माँग थोड़ी दबी हुई सी रहती है। और जिस समय पर जब वह माँग जाग्रत होती है तो आप सच मानिए कि विश्वास के आधार पर उस अनन्त परमात्मा की आत्मीयता स्वीकार करने मात्र से अपने ही अहं रूपी अणु में से वे तत्त्व प्रकट होने लगते है कि जिनके आधार पर आदमी की आँखों में त्रिभुवन का वैभव धूल हो जाता है, सबका महत्त्व खत्म हो जाता है। कुछ नहीं चाहिए कुछ नहीं चाहिए। किसी चीज का कोई महत्त्व जीवन में नहीं रह जाता। अगर वे किसी वस्तु को हाथ में लेते भी है तो जन-कल्याण की भावना से लेते है। अगर वे आए हुए साथियों को साथ में रखते भी हैं, तो उनके कल्याण के लिए रखते हैं। और अपने लिए न कोई साथी चाहिए, न कोई सामान चाहिए न आँखें खोलकर संसार को देखने की आवश्यकता होती है और न आसन-मुद्रा साधने से अभ्यास की आवश्यकता होती है। तो हृदय का जो भाव है, मैं कैसे कहूँ, मुझसे कहा नहीं जाता। अहं रूपी अणु में जो अविनाशी तत्त्व विद्यमान है, उसके प्राकट्य के साथ ही मनुष्य की सब समस्याएँ खत्म हो जाती हैं। और जब तक उस ज्ञान और प्रेम तत्त्व का विकास नहीं हुआ तब तक सारी तैयारी मिट्टी है। कुछ काम में नहीं आता है, किसी से कुछ काम नहीं बनता है। ऐसा मैने संत-वाणी में सुना और ऐसा मैंने अपने जीवन के भूतकाल को भी देखा है, सन्त-मिलन से पहले की दशा भी देखी है और, सन्त-मिलन के बाद की दशा भी देखी है। इस

आधार पर बड़ी सच्चाई और आत्मीयता के साथ मैं निवेदन करती हूँ कि और ज्यादा इधर उधर भटको मत और बेशी समय अध्ययन में, तैयारी में लगाओं मत। बहुत हो गया बाबा। अपने ही जीवन की घटनाओं का एक-एक पन्ना पढ़ लो, तो उसी से धरती-आसमान तक, यहाँ से वहाँ तक प्रकाश फैल जाएगा, सब कुछ उजाला-उजाला हो जाएगा, सब दिखाई देने लग जाएगा, कि कहाँ क्या है? तो जो त्याज्य है उसका त्याग करना ही है, जो ग्राह्य है उसको ग्रहण करना ही है, जान बचेगी नहीं। कितना अपने को बहलाते फुसलाते रहो, कुछ होने वाला नहीं है। और किसी भी देश में रहो, किसी भी परिस्थिति में रहो किसी भी नगर में रहो, चाहे जहाँ रहो अगर अपने अन्तर्निहित उस अहंरूपी अणु में व्याप्त ज्ञान और प्रेम तत्त्व के विकास पर आपकी दृष्टि चली गई, तो काम हो गया। ज्ञान के प्रकाश में भी बड़ा रस होता है और प्रेम के रस में भी बड़ा प्रकाश होता है। ज्ञानी जन भी प्रेम के रस से सराबोर होते हैं। और प्रेमी जन भी ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। क्योंकि ये दोनों ही विभूतियाँ उस अनन्त परमात्मा की है। तो ज्ञान-पंथ के साधक को भी सब कुछ मिलता है और प्रेम-पंथ के साधक को भी सब कुछ मिलता है। और जो पथ अपने को पसंद आए जल्दी-जल्दी पकड़ लो और छोटा-छोटा कदम उठाना हमारा पुरुषार्थ है, आगे बढ़कर मेरी दुर्बल बाँहों को पकड़ लेना, उस परमात्मा का स्वभाव है। अब शांत हो जाओ।

●

प्रवचन 18

हम आश्रम में आए हैं तो समय काटने नहीं आए हैं? ठीक है? जी। और आनन्द जी भाई साहब को मालूम है मंत्री की हैसियत से कि जब कभी कोई ऐसा आदमी पत्र लिखता है कि हम जितना खर्चा लगेगा देंगे और आश्रम में रहेंगे। और वृद्धावस्था है, हमारी सेवा के लिए एक नौकर रख दीजिएगा और एक Bathroom attached कमरा हमको दे दीजिएगा। हम बास करना चाहते हैं। ऐसे जो लोग समय बिताने के लिए आश्रम में आने की चर्चा लिखते हैं तो उन लोगों को हम लोग हमेशा हाथ जोड़ करके प्रार्थना करके क्षमा माँग लेते हैं। दूर से देखने में लगता है मानव सेवा संघ का आश्रम है, तो भाई हमारी सेवा करो, रखो। तो claim तो उसका ठीक ही है मानव सेवा संघ बोर्ड लिख करके तुमने लगाया है बाहर और मैं एक मनुष्य हूँ और दुखी हूँ और हमको समय बिताने के लिए ओर कोई जगह नहीं है रहने के लिए हमारी देखभाल करने के लिए हमारे बेटे-बहू असमर्थ हैं, विदेश में रहते हैं, तो पैसा ले लो और हमको रखो। क्यों? क्योंकि तुमने मानव सेवा संघ लिख रखा है।

अब मैं बता रही हूँ आपको कि इस तरह के प्रश्न भी सामने हम लोगों के आते हैं। कोई-कोई तो यहाँ तक कह डालता है कि आपने मानव सेवा संघ लिखा क्यों? जाने बिना।

यह मैं निवेदन कर रही हूँ कि अभी तक जितने लोग यहाँ आए, स्वामी जी महाराज ने चुन-चुन करके देख-देख करके खास-खास लोगों को प्रोत्साहन दिया रहने के लिए। तो जो भी यहाँ कोई आया रहने, समय काटने नहीं आया। अधिक संख्या हम लोगों में से ऐसे साधकों की है कि जो इस कारण से नहीं आए कि उनके रहने के लिए कोई जगह नहीं थी। ऐसी असमर्थता से नहीं आए। क्यों भाई? इस कारण से नहीं आए कि

रहने के लिए दुनिया में कोई जगह नहीं थी, कि उनको खाना नहीं मिलता था इसलिए नहीं आए। जो भी कोई आया सन्त के प्रभाव से, उनके ज्ञान से, उनके प्रेम से, उनकी सत्प्रेरणा से अपने कल्याण के लिए आया। तो अब यहाँ आकरके हम क्या कर रहे हैं, इस सम्बन्ध में अपनी ओर से मुझे कुछ नहीं कहना है किसी को। उद्देश्य मैंने याद दिला दिया कि हम लोग इसलिए नहीं आए कि रहने के लिए कोई जगह नहीं थी। और इसलिए नहीं आए कि रोटी का इन्तजाम नहीं था। नंदा भाई जी, खाना नहीं मिल रहा था कानपुर में? तो ऐसी बात नहीं थी? मानव सेवा संघ का आश्रम इसलिए है ही नहीं है, कि जिसको कहीं जगह नहीं मिलती उसको रख दो, जिसको कहीं खाना नहीं मिलता, उसे खाना दे दो। इस किस्म की सेवा की भावना स्वामी जी महाराज की थी नहीं। ऐसा नहीं है, कि जो लोग इस प्रकार की असमर्थता में पड़े हैं वे सेवा के अधिकारी नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। वे अधिकारी हैं लेकिन हमारी शक्ति सीमित है, हमारी परिस्थिति सीमित है। तो जिस विशेष उद्देश्य से यह आश्रम बनाया गया, उस उद्देश्य के भीतर अपाहिज और असमर्थ और भूखे लोगों को रखने के लिए अभी सुविधा नहीं है। किसी दिन हमारे पास युवक साधकों की इतनी श्रेणी आ जाए कि वह समाज के अपाहिज, भूखे व नंगों की सेवा के द्वारा अपनी चित्त-शुद्धि पसंद करें तो हमारे पास जन और धन आ जाए तो हम और आश्रम खोल देंगे और बड़ी जगह लेकर मकान बना देंगे और असमर्थों को रखकर सामर्थ्यवान साधकों से सेवा करवा देंगे। अगर ऐसी परिस्थिति बनेगी तो हम कर सकते हैं। तो सेवा पाने के वे अनधिकारी हैं, ऐसी बात नहीं है। लेकिन यह आश्रम तो उन जाग्रत साधकों के लिए बनाया गया, कि जो अपनी असमर्थता के कारण समय काटने नहीं आए, जो बची-खुची सामर्थ्य लेकर आए कि हम सामर्थ्य का सदुपयोग करेंगे, सेवा करेंगे, और अपने चित्त को शुद्ध करेंगे और मानव जीवन के उद्देश्य

को पूरा करेगे, इसलिए आए। तो पहले से भी जो रह रहे हैं, उनके लिए और आगे भी जो आने वाले हैं उनको रखने में आश्रम के प्रबन्ध को इस विशेष बात का ध्यान रखना चाहिए। ये point आप अपने से बना कर लिख लीजिए।

क्या हर एक आदमी मानव नहीं है?

हम लोग यह सब क्यों किसी को कहने जाएँगे? क्या जाने किसके भीतर क्या है? अहं तो सबके भीतर है और उस आनन्दमय की ज्योति, प्रेम का बीज तत्त्व तो सबमें है। अपनी ओर से हम किसी को नहीं कहेगे तुम मानव नहीं हो। यह हमारा काम नहीं है। अभी तो मैं केवल आश्रम में वास करने वाले लोगों को याद दिला रही हूँ कि यहाँ पर बसने हम लोग क्यों आए? अभी बाहर की बात छोड़ दीजिए, दूसरों की चर्चा। तो एक बात हो गई। अब आगे से कोई भी साधक आश्रम में वास करने के लिए आना पसंद करे और पत्र लिखे और बात करे तो सब आश्रम प्रबन्ध के ही चिन्तक और पुराने लोगों को पद और ना पद ऐसी कोई बात नहीं है यह तो सब सेवा ही के लिए है, तो सब मिलकर इस विषय पर विचार कर लीजिएगा। और जो भी कोई इस दृष्टि से सचेत मालूम हो तो उसको रखना चाहिए। और वह भी जगह की सीमा जब खत्म हो जाएगी तो हम नहीं कर सकेगे।

गौशाला बन रहा था तो स्वामी जी महाराज ने हम सब लोगों में से बहुतों से पूछा। कुछ लोग कहते थे कि ऐसी गौशाला बनाओ जिससे सब गऊओं की सेवा बने। बाल-मन्दिर में बच्चों को रखने की बात हुई तो महाराज जी ने सब लोगों से पूछा कि भई कैसा-कैसा करोगे? तो हम लोगों का मत जानना चाहते थे अलग-अलग तरह से भिन्न-भिन्न प्रकार से लोगों ने मत प्रकट किया। तो स्वामी जी महाराज ने कहा कि देखो गौशाला में कुछ लोगों का ख्याल था और खास तौर से उन भाई का

जिन्होंने संकल्प पैदा किया और सबसे पहले धनराशि जुटाई कि भई दूध न देने वाली अपाहिज और ऐसी गऊओं की सेवा करनी चाहिए, जिनकी कोई नहीं करता है, दूध वाली की तो सब लोग करते हैं। तो स्वामी जी महाराज ने यह दृष्टिकोण दिया। क्योंकि उनकी दृष्टि जो है न, उत्थान की तरफ है सब समय। तो महाराज जी ने दृष्टिकोण यह दिया कि देखो, मानव सेवा संघ की गौशाला जो होगी वह अच्छी नस्ल की गायों के विकास के लिए होगी। तो ऐसा नहीं कि उलूल-जलूल जैसे तैसे को लेकर भर दो और कह दो जिनकी सेवा कोई नहीं करता है उनकी हम करेंगे। इसकी कोई मनाही नहीं है, उनकी सेवा भी हो सकती है लेकिन अपना ध्यान तो इस बात की ओर रखना है कि अच्छी नस्ल की गायें बढ़ती जाएँ उनकी वृद्धि हो तो हम ऐसा करेंगे। तो आपको याद होगा शुरू-शुरू में हरियाणा से बहुत बड़ी-बड़ी अच्छी गायें व बछड़े खरीदे गए। हम लोग सँभाल नहीं सके अथवा इस Climate में वे लोग fit नहीं रह सकी यह बात दूसरी है परन्तु प्रयास किया। और बाल मन्दिर में बच्चियों को रखने की चर्चा जब चली थी तो बाल-मन्दिर के खुलने के समय कैसे-कैसे रखना चाहिए, क्या-क्या करना चाहिए तो यह नहीं कि अनाथ लड़कियों को जिनके माता-पिता नहीं हैं, जिनके पालन करने के लिए नहीं हैं, ऐसे सब इकट्ठा कर लो सो नहीं। लड़कियों को रखो तो ऐसी-ऐसी intelligent और जाग्रत बुद्धि की लड़कियों को रखो जो कि खास प्रकार का वायुमण्डल जो हम देना चाहते हैं, उसमें से वे अधिक से अधिक लाभ उठा सकें। समझ में आया ?तो गौशाला खोलने में वह दृष्टिकोण कि अच्छी से अच्छी नस्ल की गायों की वृद्धि हो जाए और बाल-मन्दिर चलाने में वह दृष्टिकोण कि एक से एक मेधावी लड़कियों को रखो, जो अच्छे संस्कारों से लाभ उठा सकें। तो यह सब उदाहरण मैं दे रही हूँ। और आप सब सभी आश्रमवासी लोग हैं। सबको इस प्रकार का दृष्टिकोण develop करने में

मदद मिलेगी और इसी प्रकार से इस आश्रम में उन जाग्रत साधकों को स्थान दो, जो कि साधना के द्वारा अपनी सफलता की ओर आगे बढ़ने में सचेत हैं। समझ में आ रहा है? एक बात यह हो गई।

अब आज की जो दशा है, किसकी कैसी दशा है हर भाई-बहन अपने से अपनी जानकारी करें और देखें अपने आप से अपने को और एक मंत्र, जो मुझे सूझ रहा है, वह मैं आपकी सेवा में निवेदन कर रही हूँ। अच्छा लगे तो आप लोग अपने पर लागू करके देखिएगा कि प्रातः काल, संध्या-समय, व्यक्तिगत सत्संग के समय एक बात भीतर से सोचकर देखना कि आश्रम में बस करके मैं आश्रम का उपयोग अपने लिए कर रहा हूँ कि अपने जीवन का उपयोग आश्रम की सेवा के लिए कर रहा हूँ। यह एक खास बात है। सोचने से भीतर से ऐसा लगता है कि घर-गृहस्थी में रहकर हमने जो किया था कि भाई के साथ अच्छा व्यवहार इसलिए करेंगे कि दुःख में भाई काम आएगा और पैतृक सम्पत्ति है तो उस भाई के घर उतना खर्चा हो रहा है तो हमारे घर में उतना ही होना चाहिए, उससे कुछ ज्यादा ही होना चाहिए। कम काहे को होगा। तो दो भाई थे, दो जेठानी देवरानी थीं। एक के दो बच्चे थे एक के चार बच्चे थे। तो हर समय उनके घर झंझट रहता था। इनके तो चार बच्चे हैं, इतना खाते हैं तो हमारे दो में उतना खर्च जरूर हो जाना चाहिए। तो यह सब जो हम लोगों ने घर-गृहस्थी में किया। उसी के परिणाम से हमारे लिए जन्म-मरण का बंधन बन गया। राग से भर के, द्वेष से भर के, और कुछ भोग की तृष्णा से भर के हम निश्चितता की साँस ले नहीं सके। निश्चिन्तता से मर नहीं सके और जन्म-मरण के बंधन को काट नहीं सके। अब प्रभु-कृपा से, संत-कृपा से, जीवन के मंगलमय विधान से आश्रम में वास मिला है। तो हर साधक को यह सोचना चाहिए कि आश्रम में रह करके हम आश्रम को अपने लिए उपयोग कर रहे हैं, आश्रम की सुविधाओं को आश्रम के स्थान को, आश्रम की उदारता को मानव सेवा संघ के सिद्धान्त को हम अपने उपयोग में ला करके घर से अधिक सुविधा और freedom हम यहाँ उपभोग कर रहे हैं

कि साधना की दृष्टि से मेरे पास जो कुछ है, वह आश्रम में लगा करके अपना चित्त शुद्ध कर रहे हैं। यह एक सोचने की बात है। अगर ऐसा लगता है कि दूसरे लोग तो सब तरह से आश्रम का उपयोग कर रहे हैं तो हम ही क्यों पीछे रहें? तो अच्छी बात नहीं है भाई, मानव सेवा संघ की तो उदारता इतनी है कि शासन होगा नहीं, कठोरता होगी नहीं, दबाव डाला नहीं जाएगा तो अच्छी बात है तो दूसरे लोग दिख रहे हैं वह तो बैठे-बैठे आलस्य में दिन काट लेते हैं और उन्हें भी खाना-पीना, सोना सब मिल जाता है तो हम परिश्रम करके क्यों खाएँ? हम भी उतने आराम से आलस्य में दिन काट करके, उतनी ही सुविधा लेकर रहेंगे। अगर ऐसा कोई सोचे तो ऐसा सोचना उसका किसी भी प्रकार से कल्याणकारी नहीं होगा। अगर आपको यह बात जँचे, तो प्रातः काल व्यक्तिगत सत्संग के समय उठते ही ध्यान दीजिएगा और देखिएगा और सोचिएगा कि आश्रम का और मानव सेवा संघ की उदारता का और संत के परिश्रम के परिणाम का उपयोग मैं अपने लिए कर रहा हूँ कि जो कुछ बची-खुची शक्ति ले करके, retirement के बाद आदमी के पास बचता क्या है, सारी जिंदगी निकल गई, सब परिश्रम किया, सब बाल बच्चों में लगाया परिवार में लगाया, सब उपार्जित किया हुआ धन परिवार वालों को दिया और उसके बाद बची-खुची मामूली सी शक्ति रह गई तो ले करके आश्रम में आए तो ध्यान देना इस बात पर। बची-खुची जो शक्ति ले करके आए, उसका भी उपयोग हम सेवा के लिए, आश्रम के लिए कर रहे हैं कि आश्रम से अधिक से अधिक मदद लेने की सोच रहे हैं। और जहाँ मौका मिले वहाँ ले रहे हैं। और लेने में बाधा पड़े तो क्षुब्ध हो रहे हैं और दूसरों की आलोचना कर रहे हैं, मन ही मन कुढ़ रहे हैं। ऐसा सोचना चाहिए अपने को। मैं किसी व्यक्ति से नहीं कहती हूँ और किसी को आदेश नहीं देती हूँ। आश्रम-वासी साधक हम सब लोग हैं आश्रम का आश्रय हम लोगों ने इसीलिए लिया है कि भई, ममता से मुक्त वायुमण्डल में रह करके चित्त को शुद्ध कर सकें। तो चित्त-शुद्धि का उपाय यह है। और यह सोचे कि

भई हमको तो मानव सेवा संघ में रहने को मिला है तो हम तो यहाँ जाना चाहते हैं, वहाँ जाना चाहते हैं, यह करना चाहते हैं, यह करना चाहते हैं तो प्रबन्धक हमको रहने का permission दे तो रहें, नहीं, तो आज ही चले जाएँ। यह सूचना मेरे पास आई एक ठहरे हुए साधक के बारे में कि आकर के उन्होंने प्रबन्धिका से यह कहा कि हम ऐसा-ऐसा करना चाहते हैं और अगर आप हमको सुविधा दीजिएगा तो रहेंगे, नहीं तो कल ही चले जाएँगे। ठीक बात है भई, चले जाइए बड़ी खुशी से। तो मैं अन्दाजी बात नहीं कह रही हूँ और किसी व्यक्ति की आलोचना के लिए नहीं कह रही हूँ और कोई मेरी बातों को किस अर्थ में लेगा उससे मैं डरती भी नहीं हूँ वह मुझे डर नहीं है। कोई कैसा उसको रंग देगा कोई कैसा उसको Colour देगा, कोई किस प्रकार से interpret करेगा और कैसे उन वचनों को ढूढँ निकालने की चेष्टा करेगा इससे भी मुझे कोई डर नहीं है। कोई कहता हो तो कहता रहे। सच्ची बात है, और हितकर बात है और मुझे आपने बुला कर बैठाया है कि कहो तो जो मुझे सूझता है मैं कहती हूँ। तो सोचना चाहिए इस ढंग से। एक बात यह हो
गई। बस एक ही लाइन। मैं आश्रम का उपयोग कर रहा हूँ कि मैं आश्रम के लिए उपयोगी हो रहा हूँ। दो ही बातें काफी है, अब इस ढंग से सोचना। अगर आश्रम का उपयोग अपने लिए करोगे, अपने संकल्प-पूर्ति के लिए करोगे, जो सेवा करने को हाथ में मिला है, उस सेवा के बदले में बहुत सारा अपना सब advantage पसंद करोगे तो बंधन और अधिक सुदृढ़ होता चला जाएगा।

आज सवेरे जब इस सभा में आने की बात थी तो मेरे ध्यान में आया। बहुत अच्छी बात सूझी मुझे। राँची में एक स्वराज्य के कार्यकर्त्ता व्यक्ति थे। स्वामी जी महाराज के बहुत प्रेमी हो गए थे पीछे। और आँसुओं से पति-पत्नी रोते थे और कहते थे बापू को जब गोली लगी तो हम लोग अपने को सोचने लगे, कि अनाथ बालक हो गए अब कोई माँ-बाप मिलेगा

नहीं। स्वामीजी महाराज को जब से देखा तब से ऐसा लगता है कि बापू फिर हमको देखने के लिए आ गए।

तो उन्होंने अपनी बात का वर्णन किया तो कहा कि चार भाई हम लोग हैं और चारों भाई सयाने हो गए, सबका ब्याह हो गया, सबकी गृहस्थी बाप ने सजा दी। दुकान-मकान सब दी। व्यापारी वर्ग के हैं तो बाप ने चारों को कर दिया अब। दुकान-दुकान मकान-मकान सब भाइयों को बैठा कर और उसके बाद कहा अब एक पैसा मैं अपना तुम लोगों को नहीं दूँगा। और बहू जो है वह स्वामी जी की बहुत प्रेमी है वह तो हँसती, कहती ससुर ने कहा बहुओं से, सब हीरा, सोना जो कुछ यहाँ रखा था तुम्हारी सास का तुम्हारा दिया हुआ वह सब लाकर हमारे पास इकट्ठा कर दो अब तुम्हारे पतियों को मैंने समर्थ कर दिया। अब वे कमा कर पहनाएँगे सो पहनाएँगे। सावित्री बहन हँसे और कहे कि हमारा मंगल सूत्र भी ससुर ने ले लिया क्यों ले लिया? गांधी जी को देना था स्वराज्य के, देश के काम में लगाना था सब इकट्ठा करके ले लिया और गाँधी जी को दान दे दिया यह सब जाएगा देश की सेवा में और तुम्हारे पति अब कमाएँगे और जो पहनाएँगे सो पहनना, जो खिलाएँगे सो खाना। इस extreme की चर्चा मैं नहीं करती हूँ।

उस समय देश की हालत ऐसी थी। ऐसी लहर थी एक-एक आदमी रक्त निछावर करने के लिए तैयार थे। लोग, फिर सोना हीरा का क्या मूल्य था? तो हमने सोचा कि अपनी कमाई का दुरुपयोग तो कोई करता ही नहीं है। अपनी कमाई का जो पैसा होता है परिश्रम पूर्वक जो कमाता है उसका दुरुपयोग कोई नहीं करता है। जो बाप बहुत सम्पत्ति इकट्ठा कर लेते हैं, उनके लड़के बच्चे नालायक होकर बाप की कमाई का दुरुपयोग करते हैं। वह दुरुपयोग एक सीमा के भीतर सीमित रह जाता है। एक बाप की कमाई चार बेटे नुकसान कर लिया और क्या करेंगे? तो हमारे ध्यान में आया कि संत की सद्भावना, संत का परिश्रम जो भी कुछ कहा जाए, उसका दुरुपयोग हम न करें।

एक उदाहरण मुझे याद है शुद्ध बोध माता जी के सामने की बात है। आश्रम अभी बन ही रहा था। स्वामी जी महाराज कहीं से यात्रा करके आए। हम लोगों ने Box को खोला, सँभालने लगे कि भाई सँभाल करके रख दो और स्वामी जी के कपड़े-वपड़े जो कुछ देना है दे दो यात्रा के लिए। तो उसमें से कपड़े निकालें हम। पुराने कपड़े का एक टुकड़ा था, उसके कोने में लाल मिर्च के दो टुकड़े और इतना-सा नमक गाँठ में बाँधा हुआ था। तो डॉक्टर मदन और हम दोनों कर रहे थे काम। तो मदन तो एकदम रोने लगा एकदम। दीदी पिता जी का हाल देखो दीदी ये नमक और मिर्चा बाँध कर लाए है साथ। खूब रोया। तो याद दिलाया मैंने किसलिए? कि यह आश्रम आपके पुरुषार्थ से नहीं चल रहा है। संत के हृदय में एक बड़ी जोरदार भावना थी, कि ऐसा आश्रम हो कि जिसमें साम्प्रदायिकता, मतभेद और यह सब छोड़ करके सचमुच कोई साधक है तो वह रोटी से निश्चिन्त हो करके सत्य की खोज कर सके। इस आश्रम की स्थापना का यह आधार है। यदि सचमुच कोई साधक सत्य से मिलना चाहता है, ईश्वर को मिलना चाहता है, तो उसको भिक्षा करने के लिए चिन्ता न करनी पड़े, कहीं जाना न पड़े, शांति से बैठ करके सत्य की खोज कर सके। एक ऐसा इन्तजाम मैं करूँ तो रोटी हो और दूध हो। यह उनके भीतर की कल्पना थी कि ऐसा हो जिसमें कि सचेत साधक जाग्रत हो करके और सत्य की खोज कर सकें इसके लिए उन्होंने यह जुटाया। तो यह आश्रम चल रहा है यहाँ अन्न, जल, वस्त्र और दवा मिल रही है।

तो उस संत, उस प्रभु-प्रेमी की प्रेरणा से मिल रही है, उसकी सद्भावना काम कर रही है। अब कभी जब मेरे सामने ऐसी कोई बात सुनने को आती है कि अन्न का नुकसान हो रहा है कि किसी वस्तु का अपव्यय हो रहा है, कि आश्रम की सामग्री गड़बड़ हो रही है कुछ भी,

किसी भी प्रकार से मैं किसी व्यक्ति का नाम नहीं ले रही हूँ। नाम लूँगी नहीं क्योंकि ये सब हमारी सुनी हुई बातें हैं, जानी हुई बातें नहीं है। जानने की जिम्मेदारी यहाँ के रहने वालों पर है। और जो लोग आँख से देखते हैं, उनकी जिम्मेदारी है कि वे अपने को भी सँभाले और साथियों को भी सँभाले। और प्रेम पूर्वक सँभालें, मान-अभिमान बिना सँभालें, बिना लड़ाई किए सँभालें। देखने वालों का काम है।

मेरा काम केवल इतना है कि मैं सुझाव दे दूँ कि तुम साधक हो करके अगर आश्रम की वस्तु को किसी भी प्रकार से बिगाड़ो अथवा आश्रम की वस्तु के बल पर तुम उपकारी और दानी बनो तो इससे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। नहीं होगा कल्याण। चाहे कितना ध्यान करो चाहे कितना पाठ करो चाहे कितना भजन करो चाहे कितना एकादशी का व्रत करो नहीं होगा कल्याण, एक पैसा भी अगर बिगाड़ते हो, खराब करते हो। जहाँ रहती हूँ मैं, उस जगह पर बहुत से बंदर है तो कभी-कभी मुझे दिखता है कि रोटी छत पर पड़ी सूख रही है। तो बंदर तो रसोईघर से बर्तन में से नहीं ले गया होगा। इसलिए नमक मिर्च की बात आज मैंने सबके सामने कह दिया। कहाँ-कहाँ से कुली अगर 14 आने की जगह पर एक रुपया माँगता है तो त्रिगुणातीत पुरुष, जिनको संसार से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं था, वे 14 आने दिलवाएँगे 16 आना नहीं देगे 2 आने के लिए बैठ करके, खड़े होकर 10 मिनट कुली से बात करेंगे। तो क्या समझा है हम लोगों ने? तो एक भी आवश्यक पैसा जो खर्च करता है, मैं कहने जा रही थी कि बाप की कमाई सम्पत्ति का अपव्यय करने का उतना दोष नहीं लगता होगा, जितना संत की कमाई का अपव्यय करने का लगेगा। बाप की कमाई को बिगाड़ने में और भाइयों का भी डर रहता है, मार-पीट हो जाएगी, मुकदमा हो जाएगा। झगड़ा-झंझट हो जाएगा मानव सेवा संघ की उदारता में इतना भय नहीं है, तो निर्भयता का यह उपयोग हम लोग करें तो उससे बढ़कर

और कोई नुकसान की बात नहीं होगी। तो सो नहीं करना चाहिए, किसी को कभी नहीं करना चाहिए। सार्वजनिक सम्पत्ति जो साधकों की सेवा के लिए आई, उसमें से दान करने का मेरा क्या हक है? उसको दूषित करने का मेरा क्या हक है? उसको अब क्या-क्या मैं कहूँ अपना-अपना सब लोग सोचेंगे। तो दूषित करो तो अपने लिए असाधन की जंजीर कस रहे हो, बाँध रहे हो।

प्रेम करना, सहयोग देना, प्रार्थना करना, दुखी होना पर-पीड़ा से पीड़ित द्रवित हृदय से प्रार्थना करना, परमात्मा को पुकारना। मुकदमा करना और झगड़ा करना यह मैं नहीं कहूँगी।

विधि-विधान मैं किसी को कुछ नहीं बताऊँगी इसलिए कि सबके पास अक्ल है और सबको अपने-अपने कल्याण की चिंता है। इसी से हमारे दिल को बहुत संतोष आ जाता है, धीरज आ जाता है कि हम सब लोग सयाने हैं। अपने-अपने कल्याण की चिंता सबको है। तो सयाने हो, सयानेपन से लाभ उठाओगे तो तुम्हारा विकास हो जाएगा। सयाने होकर के सयानेपन का लाभ नहीं उठाओगे तो कोई नहीं करा सकेगा, यह है। तो जो भी कुछ निकटवर्ती जनसमुदाय के बीच में रहना पड़ा, मैं तो कहती हूँ कि हम लोगों में से एक-एक आदमी अगर कष्ट सह करके भी गलती नहीं करेंगे, खुद, गलती नहीं करेंगे चाहे कितना भी कष्ट हो जाए। केवल इस व्रत के लिए हम लोग तैयार हो जाते हैं, तो वातावरण बदल जाएगा। तो कभी-कभी हम ऐसा सोचने लगते हैं कि अरे वाह, आपने उनको नहीं रोका तो हमको काहे रोक रहे हैं। भीतर से बड़ा दुःख हो जाता है। हमने कहा कि वह गड्ढे में जा रहा है तो हम भी जाएँ, वह गिर रहा है तो हम भी गिरेंगे। तो यह आदमी का काम नहीं है। दूसरा दुरुपयोग कर रहा है तो हम नहीं भी करेंगे। दूसरा असाधन कर रहा है तो हम क्यों न करें। यह सयानेपन की बात नहीं है। दूसरे जो अच्छाई कर चुके हैं, उनकी

अच्छाई से कोई उत्साह नहीं। दूसरे जो निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं, उनकी निःस्वार्थ सेवा से मैं उत्साह लूँ। दूसरे जो सचेत होकर भजन में, भगवत् भक्ति में, शांति में, उदारता में, प्रेम में लगे हुए है तो उनको देखकर के हम इन सब बातों में आगे बढ़ें, उन्नति का तो यह रास्ता है। तो दूसरे लोग अच्छाई में क्या-क्या कर रहे हैं, सबमें अच्छाई भी है न, खाली बुराई तो नहीं है। बहुत सी बातों में बहुत सी अच्छाईयाँ आपके पास है तो सब एक-दूसरे की अच्छाई देख-देख कर सीखें, कि उनके बोलने का ढंग कितना अच्छा है, तो हम भी अच्छा बोलें। उनमें दूसरों को मदद करने की कितनी प्रवृत्ति है, तो हम भी मदद करने की सीखें। उनमें थोड़े में अपना निर्वाह करने के लिए कितना अच्छा आदर्श है, तो हम भी वैसा सीखें। तो आखिर इतने लोग इकट्ठे हुए हैं, सब बुराई की खान तो नहीं हैं। बहुतों में बहुत अच्छाइयाँ हैं। तो हम लोग एक-दूसरे की अच्छाई देख-देख करके आगे बढ़ने को आगे निकले, इसलिए बहुत सोचा तो मेरी समझ में यह आया अपने लिए तो मैंने तय कर लिया है आप भाई-बहनों को भी यह सलाह दी कि जब कभी आश्रम में पारिवारिक गोष्ठी बैठाओ तो किसी को मत कहो कि तुममें क्या बुराई है, और तुम क्या गलती कर रहे हो। अपने में क्या बुराई है, हर साधक जानता है। तो सबके प्रति प्रेम रखो, सद्भाव रखो, सबका कल्याण मनाओ और मना करने की जरूरत पड़े तो खूब प्रेम पूर्वक, खूब आत्मीयता से मना करो और इतने बल से मना करो कि भई यह गलत काम तो आपको करने ही नहीं देंगे, क्योंकि आप मेरे भाई है, आप मेरी बहन है, आप मेरी माता है।

एक बार ऐसी कोई बात हो गई थी। एक महिला जो स्वामी जी की शरण में आ गई थी, रह रही थी यहाँ तो उसके पति लेने आए। ऐसे कुछ पारिवारिक खटपट हो गया था, तो वह महिला जाना नहीं चाहती थी। तो स्वामी जी ने कहा था कि हम यहाँ रख कर जा रहे हैं। और जब

तक हम आएँगे तब तक इसको यहाँ रखना, फिर परिवार के लोगों से बातचीत करके इसको यहाँ से विदा करेंगे। तो उसके पति आ गए पीछे ही और कहने लगे कि हम ले जाएँगे। तो वह कह रही थी हम अभी नहीं जाएँगे। स्वामी जी कह के गए हैं ऐसा-ऐसा आएँगे तब जाऊँगी तो पति में इतना उतावलापन था कि उन्होंने जबरदस्ती कहा कि नहीं तुमको जाना ही पड़ेगा। और जोर डाल कर ले गए। तो स्वामी जी महाराज आए, तो बड़ी माता जी थी और लोग भी थे। खूब गुस्सा हुए कहने लगे महिलाओं का आश्रम और महिला जिन्हें रखके गया था उनके जाने की तो बात ही नहीं थी। तो शुद्धबोध माता जी से उन्होंने कहा 'ऐसा कैसे हुआ कि तुम्हारे देखते-देखते वह ले गया, तुम रास्ते में लेट क्यों नहीं गई? तुम्हारे जिंदा रहते-रहते यह काम हो कैसे गया? तुमको रोकना चाहिए था, नहीं भेजना चाहिए था।' और बहुत कुछ बातें बताईं, सब कुछ कथा कहने की जरूरत नहीं है। तो इतना मैं कहती हूँ कि भूल करने वाले को देखकर भूल करना यह मेरा धर्म नहीं है, अच्छाई करने वाले साधकों को देखकर अच्छाई सीखना यह अपने लिए कल्याण की बात है। तो सबके पास कुछ न कुछ अच्छाई है। अच्छाई को देखते जाइए, अच्छाई सीखते जाइए, अच्छाई का अनुसरण करते जाइए और अपनी बुराई आप देखिए और दुखी हो जाइए और सभी भाई-बहनों का कल्याण मनाना चाहिए। आपकी दृष्टि में अगर कोई बहुत ही गलत साधक दिखाई देता हो, तो भी आपके हृदय में उसके लिए बड़ी गहरी पीड़ा होनी चाहिए कि हे भगवान् इसे सद्बुद्धि दे दो, यह सँभल जाए। मैंने खूब सोचकर देखा कि यह अपने लिए बड़ा नुकसानदे है कि हम साधकों की शक्लें देख-देखकर उसके बारे में सोचते रहें। बहुत नुक़सान-दे बात हो गई और जैसे-जैसे हम उसको बुरा कहेंगे अपने में सद्गुणों का अभिमान बढ़ता रहेगा। यह तो इतना गलत करने वाला है, मैंने तो ऐसा नहीं किया। इसमें त्रुटि है हमने तो ऐसा नहीं किया। तो

दूसरों की बुराई देखते-देखते अपना ही मामला चौपट हुआ है। तब मैंने सोचा कि तब क्या करना चाहिए? तो महाराज जी की वाणी में से ढूँढ करके यह रास्ता मैंने निकाला कि हम किसी को कहेंगे नहीं कि तुम्हारे में यह बुराई है। हम नहीं कहेगे कि भैया, बुराई-रहित होने के लिए इस आश्रम में आए हो यह साधन-धाम तुम्हें पवित्र करने के लिए है, यह संत-धाम तुमको सत्य और परमात्मा तक पहुँचाने के लिए है। अगर यहाँ बैठ करके अपनी बुराई को बढ़ावा देते हो, तो मैं कहती हूँ कि गृहस्थी में रहकर बुराई करने से जितना नुकसान होता था, इस संत-धाम में बैठ करके उसका सहस्त्रगुणा अधिक भार अपने पर लग जाएगा। तो हम अपने को सँभालेगे तो मानव सेवा संघ पर अहसान नहीं करेगे। हाँ, थोड़ा काम करेंगे तो आश्रम पर अहसान नहीं करेगे, कि इसने बड़ा काम किया है, अपने को सँभाला है। हम तो कहते हैं कि संत ने ऐसा अवसर बना दिया कि बची-खुची पूँजी भी तुम अर्पण करो तो उतना ही देने में वहीं जीवन मिलेगा, जिन्होंने जन्म से ही समर्पण किया हो।

बड़ा मंगलकारी विधान है। इन सब बातों को तुम सब लोगों को ध्यान में रखना चाहिए और किसी की बुराई को कहने से कोई लाभ नहीं होगा। प्यार पूर्वक सँभाल करके चलना चाहिए और अपने-अपने भीतर अगर साधना की चेतना बढ़ गई तो अपने आप से ही सब त्रुटियाँ खत्म हो जाएँगी। तो हर समय दूसरों के दोष का उल्लेख करते रहो, यह ऐसा कर रहा है इसने यह ऐसा किया, इसने बिगाड़ दिया यह अपने चित्त को दूषित करना है। और संघ की सम्पत्ति, के सम्बन्ध में क्या कहूँ? हमें धनबाद से ट्रेन पकड़नी थी और पुरलिया में सत्संग था। हमें एक दिन पहले पुरलिया से शाम के समय बुला लिया। ले आए कार में बैठा करके। भोर में ट्रेन है तो भोर में इतनी लम्बी यात्रा ठीक नहीं रहेगी आप चलिए तो मैं आई। कुछ लोग धनवाद से पुरलिया में आए थे सत्संग में शामिल

होने के लिए। एक सज्जन आए मेरे पास बैठे तो 101 रु० उनका देने का उनका मन था और उनकी स्त्री का मन था और ज्यादा दिया जाए, तो उन्होंने कुछ संकेत किया होगा। तो पति-पत्नी आपस में बात कर रहे थे। मैं उधर बैठी थी तो पति ने कहा अरे भई तुम बोलो तो कितना देना चाहती हो उतना देंगे, काहे नहीं देगे। फिर आपस में जैसा उन लोगों ने सलाह की 251 रु० उन्होंने निकाला और निकाल कर हमारे पास लाए तो रख करके कहने लगे कि माता जी यह आपके लिए मैं दे रहा हूँ तो आप जिस तरह से सेवा-कार्य में लगाना चाहें लगा दीजिए। और हँस कर कहते हैं आपको दिया हुआ पैसा जो है सो बढ़िया से बढ़िया काम में लगेगा। ऐसा कह करके वह आदमी चला गया। हमने कहा इसने तो पुण्य कमा लिया। अब हमारे ऊपर वह भार डाल गया कि अगर उस 251 रुपयों में से एक भी नया पैसा मैं बेईमानी करूँ, इधर-उधर करूँ संस्था के काम न लगा करके कुछ अपनी ही रुचिपूर्ति में करूँ तो कितना बड़ा अपराध मेरे लिए बनेगा। तो वह आदमी तो बड़ा जबरदस्त काम कर गया। खड़ा हो करके हमारे सामने रख करके चला गया कि माता जी, आपको दिया हुआ बढ़िया काम में लग जाएगा। हँस करके दोनों पति-पत्नी चले गए तो हमारे भीतर ऐसे करंट सा लग गया। हम ने कहा, कि इस आदमी ने भगवान की प्रसन्नता प्राप्त कर ली। तो भई दे दिया, इस विश्वास से दे दिया कि मानव सेवा संघ को दिया हुआ अच्छे काम में लगेगा। अब अगर हम उसमें से एक नया पैसा भी इधर-उधर करें, तो, सोचो हमारे लिए नरक में भी जगह रहेगी? कितनी बुरी बात है?

तो शरीर वैसा ही है जैसा कि पैसा है। शरीर का उपभोग भी पूरी तरह से सेवा के लिए, साधना के लिए होवे तो चित्त शुद्ध होवे। तो महाराज मामूली बात है? जन्म-जन्मातर का इतना जबरदस्त विकारों का प्रभाव, मोह का प्रभाव, लोभ का प्रभाव, काम-क्रोध का प्रभाव बड़े-बड़े

ऋषि-मुनियों को कितने ऊँचे stage पर जाकर पछाड़ देता है, कोई सहज बात है क्या? तो सहज बात नहीं है और इतना बड़ा पुरुषार्थ करने के लिए अब यह समय जो हम लोगों को मिला हुआ है, खत्म हो जाएगा। देखो यह 5 मिनट का समय भी खत्म हो जाएगा। खूब सावधानी रखो। परमात्मा कभी भी नाराज नहीं होते हैं। संत-जन कभी भी साथ नहीं छोड़ते हैं।

अरे भई, प्रभु जब हजार प्रकार के किए हुए अपराध को क्षमा करने के लिए तैयार है, तो तुम्हारी क्या हैसियत है कि दस भूल अपने में रखो और दूसरे की एक भूल देखकरके उसको क्षमा करने के लिए हृदय नहीं रखते हो। यह क्या बात है? तो ऐसा नहीं होना चाहिए। इसमें अपना अहं बढ़ता है, अभिमान बढ़ता है, अपना अकल्याण होता है। हो सकता है, महाराज जी की वाणी है हो सकता है जिसने भूल की, उसके भीतर पश्चाताप की आग जल उठे तो तुम्हारे से पंहले पवित्र हो करके परमात्मा के पास पहुँच जाएगा और तुम उसकी भूल देखकर अभिमान लिए बैठे रहोगे तो पीछे रह जाओगे। तो हम लोग सब अभिमान गलाने आए हैं और दूसरे को देख-देख करके उनके सद्गुणों का अनुसरण करने आए हैं, अपना कल्याण करने आए है और जो कुछ लाए है अपने पास जो बचा-खुचा रह गया है, उसके द्वारा सेवा करके अपने को शुद्ध करने आए है, बस आज तो इतनी बात कह कर बस करती हूँ। और जो भी कहा मैंने, उसकी कोई भी बात किसी भाई-बहन को अच्छी न लगी हो, तो मैं हृदय से क्षमा माँगती हूँ। हित-भावना से ही मैंने कहा है, जो कहा है। और कोई बात आप लोगों को नापसंद आई हो, तो उस पर ध्यान मत दीजिएगा, मेरी भूल कहकर उसको छोड़ दीजिएगा। और अपना कल्याण जिसमें लगे सो कीजिएगा। सब मिल करके सबके प्रति सद्भाव रखो हे प्रभु हम सब भाई-बहनों को सद्बुद्धि दीजिए। हे प्रभु हम सब भाई-बहनों

को सन्मार्ग पर चलने की शक्ति दीजिए। हे स्वामी जी महाराज, आपने प्रभु के समर्पित किया है तो हे महाराज, हम सब लोगों को उसके योग्य बनाइए। वे अपना प्रेम-रस छोटे-छोटे पात्र में भी भर दें ऐसी प्रार्थना करते रहो। जिस पर दृष्टि पड़े, उसकी भूल को मत याद करो, उसके कल्याण को लेकर के उसके लिए भी प्रार्थना करो। जिस पर दृष्टि पड़े, तुम्हारे मत को मानता है कि नहीं, तुम्हारे पक्ष में बोलता है कि नहीं, तुम्हारी भलाई-बुराई सबका समर्थन करता है कि नहीं, तुमको सहयोग देता है कि नहीं, तुम्हारे काम आता है कि नहीं, मत सोचना। सब साधक है, सब प्रभु के हैं सब स्वामी जी महाराज के हैं, सबको अपना कल्याण अभीष्ट है। हे प्रभु! सबका कल्याण करो, हे प्रभु! सबका कल्याण करो। अब इसी प्रार्थना, इसी भाव को लेकर के थोड़ी देर शांत हो जाओ।

●

प्रवचन 19

उपस्थित महानुभाव, सत्संग-प्रेमी माताओ, बहनो और भाइयो !

दायित्व पूरा कर देंगे, माँग पूरी हो जाएगी, ऐसा मानव-जीवन का सत्य है, इस सत्य में आस्था हो जाने पर दायित्व पूरा करने की तत्परता मानव जीवन में बढ़ जाती है। जैसे-जैसे मैं महाराज जी की वाणी अभी सुन रही थी, मेरे ध्यान में आ रहा था कि योगवित होना, तत्त्व वित होना और भगवत् भक्त होना, ये बातें हम सभी भाई-बहनों को स्वभाव से पसंद है। ऐसा हम सब लोग होना चाहते हैं। क्या कारण है कि सत्संग सुनने वाले भाई-बहनों में से कुछ लोग तो इस दिशा में बड़ी जल्दी आगे बढ़ जाते हैं, ऐसा दिखाई देता है, ऐसा हम लोगों को मालूम होता है। और अपनी ओर देखो तो विकास के क्रम में कुछ शिथिलता दिखाई देती है। तो ऐसा क्यों होता है ?

ऐसा मैं सोचती हूँ, स्वामी जी महाराज ने एक महिला साधक के सम्बन्ध में बताया कि किसी सन्त का बड़ा प्रभाव हो गया उनके जीवन पर, तो बड़ी श्रद्धा-भक्ति उपज गई उनके प्रति। वे लोग किसी नदी के किनारे-किनारे कहीं जा रहे थे। तो महिला ने हाथ में बहुत मोटे-मोटे सोने के कड़े पहने हुए थे। कुछ दूर चलते-चलते पता नहीं सन्त के जी में क्या आया, तो उन्होंने कहा कि क्या करेगी यह सोना पहन के, तो महिला ने कहा क्या करूँ महाराज, कोई खास बात नहीं है। तो निकाल के डाल दे जल में। तो उन्होंने दोनों हाथों में से निकाला और जल में डाल दिया। कोई बात नहीं, चली जा रही हैं अपना। कुछ दूर तक जाने के बाद संत ने उस देवी से पूछा, सोने के कड़ों का कोई ध्यान तो नहीं आ रहा है तुमको ? तो उन्होंने कहा नहीं महाराज, हमको तो कोई ध्यान नहीं आ रहा। संत ने कहा कि भाई हमको तो ध्यान आ रहा है, तुमसे डलवा दिए मैंने। तो बोली कि आप अपने पर इसकी जिम्मेदारी ले रहे हैं। तो आपको लग

रहा है, महाराज, हमें नहीं लग रहा है। ऐसा उत्तर दिया उन्होंने। उनको तो ध्यान नहीं आ रहा है। तो हृदय में एक उच्चता होती है, जैसा मैंने संतवाणी में सुना। जीवन में पहले से एक तैयारी होती है, जिसके प्रभाव से संत की वाणी सुनो, गुरु के वाक्य सुनो, ग्रन्थ के वाक्यों को पड़ो तो जिस समय जो कुछ सुनने-समझने में आया, उसका बड़ा असर हो जाता है अपने पर। बड़ा गहरा असर हो जाता है अपने पर। और अगर इस प्रकार की तैयारी नहीं है, तो सोचते-सोचते, समझते-समझते, कोशिश करते करते धीरे-धीरे विकास होता रहता है।

एक सज्जन अभी जीवित हैं, करीब 30-35 वर्ष पहले की बात है। धन कमाने का उनका रोजगार था। और अच्छा रोजगार था और उसे छोड़कर स्वावलम्बी होकर, स्वावलम्बी इस अर्थ में कि नौकर चाकर से काम नहीं लेंगे तो खुद ही अपना कमरा साफ करेंगे, खुद ही अपने कपड़े धोएँगे, खुद ही अपने खाए हुए बर्तन धोएँगे, सफाई रखेंगे, बिस्तर बनाएँगे। तो पैसा वाला होने के कारण से बहुत आराम से उनकी रहने की आदत थी और एकदम से उन्हें धुन लगी तो सब कुछ एक साथ छोड़ दिया और बहुत ही सावधानी से साधना में लग गए। उनके सम्बन्धी मुझको बता रहे थे कि इस बार जब मैंने स्वामी जी महाराज को बताया कि बड़ा ही त्यागमय जीवन हो गया है और ऐसे-ऐसे उन्होंने रहना आरम्भ कर दिया है और सब समय वह अपनी साधना में लगे रहते हैं। ऐसा मन प्रसन्न हो करके स्वामी जी महाराज को बताया। तो स्वामी जी महाराज ने सुना अपने दिल से जानते होंगे अथवा अन्तर्यामी रूप से उनकी साधकों के जीवन का चित्र उनको दिखता ही रहता था। उस दिन भी वह बता रहे थे कि स्वामी जी महाराज सुन करके गम्भीर हो गए और थोड़ी देर के बाद उन्होंने कहा कि भैया मैं क्या बताऊँ वह आदमी अपनी साधना में बल का प्रयोग कर रहा है। यानि अपने से लड़ रहा है, ऐसा उन्होंने कहा। तो

उस समय यह बात समझ में किसी के नहीं आई। क्योंकि सभी नाते-रिश्ते, कुटुम्बी, अपने-पराए सभी लोग उनके रहन-सहन से एवं त्याग से एकदम प्रभावित हो गए थे। तो स्वामी जी महाराज ने कहा कि भैया, बल का प्रयोग कर रहा है, वह लड़ रहा है अपने से। सुन लिया उन्होंने, चुपचाप रहे, कोई बात ही नहीं है।

बहुत लम्बा समय निकल जाने के बाद उन साधक सज्जन के जीवन में भीतर से सरसता नहीं उपजी होगी, ऐसा हम लोग अब अनुमान लगाते हैं। तो बड़ी खिन्नता है, बड़ा क्षोभ है, बड़ी उदासी है और निकटवर्ती कुटुम्बी जनों की ओर से। उन्होंने जिन के प्रति जीवन में बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं इनको ऐसा करना चाहिए, मेरे लिए इनकी ऐसा करना चाहिए मेरे लिए। यह सब अब पैदा हो गया तो सुना मैंने सब समाचार तो भीतर-भीतर एक चिंतन पैदा हो गया मेरे, मैंने सोचा कि प्रौढ़ अवस्था में, युवावस्था के बाद की बात है, जब शरीर हर प्रकार से हृष्ट-पुष्ट है और बहुत अच्छी तरह से परिश्रम कर सकता है आदमी तो। यह क्या उनके स्वास्थ्य की अनुकूलता थी, कि उन्होंने संसारियों से किसी से भी मदद लेना, एकदम से बन्द कर दिया। और बिल्कुल अपने आप को सँभालने लगे, करने लगे, देखने लगे। तो यह त्याग का बल था कि शारीरिक स्वास्थ्य की अनुकूलता का बल था, ऐसा मैं सोचने लगी। फिर मैं सोचने लगी, कि क्या जाने अपने साथ भी कहीं ऐसा न हो कि शारीरिक असमर्थता की घड़ी में दूसरों के प्रति बहुत प्रकार की आशाएँ जाग्रत हो जाएँ कि इनको ऐसा करना चाहिए मेरे साथ, इनको ऐसा करना चाहिए मेरे साथ। ऐसा मैं सोचने लगी फिर मेरे ध्यान में आया। अब दोनों तरह की बातें रख रही हूँ मैं आपके सामने। एक वह साधक जिसके जीवन में इतनी तैयारी थी कि संत के कहने से उन्होंने, महिलाओं को सोना, हीरा का शौक भी रहता है और महत्त्व भी रहता है, तो उन्होंने संत के कहने से एक सेकण्ड के लिए भी सोचा नहीं

और सब उतार कर डाल दिया गंगा जी में। उसके बाद उनके मन में किसी प्रकार का चिन्तन नहीं आया उसके बारे में। एक यह दृश्य और दूसरा यह कि सब कुछ करने के बाद लम्बी अवधि बीत गई उस रहन-सहन में और फिर पुरानी सारी वे बातें लौट करके आ गईं, कि अमुक समय पर मेरा अमुक यह सब काम होना ही चाहिए। और नाते-रिश्ते, अपने-पराए, नौकर-चाकर सबको हमारे पर ध्यान देना ही चाहिए। ये सारी बातें फिर दोहरा कर आ गईं। और मंगलमय विधान प्रभु का ऐसा है कि सब कुछ रहते हुए भी अब किसी का जी ही नहीं होता है, कि उनकी बहुत अच्छी सेवा की जाए। सब सुविधाएँ हैं, ऐसा नहीं है कि किसी विशेष परिस्थिति की प्रतिकूलता आ गई सो नहीं है। लेकिन जिन लोगों ने मुझे बताया उन लोगों की बात को ध्यान में रखकर मैं कह रही हूँ। अब असली बात मैं क्या कहना चाहती हूँ, जो अपने लिए और आप सब भाई-बहनों के लिए आवश्यक है, वह मैं अब कहने जा रही हूँ। क्या है? जैसा यह उदाहरण सामने आया कि जब चारों ओर उनका जयकार हो रहा था उस गृहस्थ साधक का गृहत्याग के समय, तो स्वामी जी महाराज ने यह वाक्य कह दिया, कि भैया वह तो बल का प्रयोग कर रहा है। लड़ रहा है अपने से। यह बात बहुत अच्छी नहीं निकली। बल का प्रयोग करके, अपने पर दबाव डाल करके और त्यागमय जीवन की नकल करना, कि ऐसा होना चाहिए, ऐसा होना चाहिए, ऐसा होना चाहिए, यह बात भी बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हुई। आगे चलकर वे सज्जन बहुत तकलीफ में पड़ गए। और भी इस बार 2-4 गृहस्थों के बारे में इस तरह का समाचार मुझे सुनने को मिला। चारों की कहानी नहीं बता करके एक ही दो में खत्म कर रही हूँ मैं। आगे हम लोगों को अपने बारे में सोचना है। तो अभी मेरे ध्यान में आया कि घर-गृहस्थी में रहते हुए, समाज में रहते हुए, जन समाज से सम्पर्क रखते हुए यदि हम लोग आई हुई अनुकूलता को दुखी जनों की

सेवा में लगा करके, अपने चित्त को शुद्ध और शांत नहीं कर लेगें, तो योगवित होना, तत्त्ववित होना, भगवत्-भक्त होना तीनों ही उद्देश्य हमारे अपूर्ण रह जाएँगे। यह खास बात मेरे ध्यान में आई।

स्वामी जी महाराज यह तो कभी कहते ही नहीं है अपनी और से कि इतनी देर बैठ करके नाम लेना, कि इतनी देर बैठ करके जप करना कि इतने तीर्थाटन करके आओ कि इतने दिन उपवास करो, ऐसा तो उन्होंने कभी नहीं कहा। यह नहीं है कि जप, तप, उपवास, व्रत इत्यादि को बुरा माना जा रहा है, कि खण्डन किया जा रहा है, सो बात नहीं है। लेकिन स्वामी जी महाराज ने मनुष्य के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाकर, अशुद्धि मिटा कर, उसको शुद्ध करके, उस सीमित व्यक्तित्व के मोह से मुक्त करके योगवित्, तत्त्ववित्, भगवत-भक्त होने के जो मूल उपाय हैं, वे हम लोगों के सामने रख दिए। और ये सब जो है बाहरी क्रिया-कलाप आदि ये सब सहयोगी हैं लेकिन किसके जीवन में यह सजीव होते हैं? जिन्होंने उस मूल उपाय को कर लिया है। उसके द्वारा ध्यान, जप, पूजा, व्रत जो भी कुछ किया जाता है, यह सजीव होता है, इन सबका अच्छा फल निकलता है। और वह मूल उपाय जिसने नहीं किया है उसके लिए यह सब उतने लाभदायक सिद्ध नहीं होते हैं। कभी-कभी मैंने ऐसा सुना संतवाणी में कि यह कालान्तर में जाकर फलित होते हैं। तो उस मूल उपाय पर ध्यान दीजिए।

मनुष्य के जीवन में दो प्रकार की शक्तियाँ हैं, साधना के पथ पर आगे बढ़ाने वाली। एक तो है वह, जिससे आदमी को प्रकाश मिलता है, कि क्या अच्छा है क्या बुरा है? क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए? किस तरह से चलना चाहिए, किस तरह से नहीं चलना चाहिए। इस बात का एक निर्णयात्मक प्रकाश हर एक व्यक्ति को मिलता है। वह प्रकाश क्या है? वह प्रकाश जो है वह जीवन दाता का दिया हुआ मार्ग

दर्शक है वह हमारी उपज नहीं है, वह मिला हुआ है। किसको मिला हुआ है? मानव मात्र को मिला हुआ है। ऐसा वह एक प्रकाश है, जिसमें कि व्यक्ति को सही रास्ते पर चलने का ज्ञान, निर्णय मिलता है। यह तो एक जीवनदाता, जन्मदाता का दिया हुआ प्रकाश है जोकि सबमें सदा के लिए विद्यमान रहता ही है।

दूसरी एक शक्ति और है मनुष्य के भीतर। मनोविज्ञान वाले उसको लिबिग्नल फोर्स कहते हैं सम्पूर्ण जीवनी-शक्ति। अनुवाद करके हिन्दी शब्द बनाए गए हैं, लेकिन मुझे ठीक जँचते नहीं। किसी ने ऊर्जा कहा, किसी ने और कुछ कहा तो मैं अपने को समझाने के लिए और जिस तरह से मेरी समझ में आया उसी तरह से आपको बतलाने के लिए जीवनी-शक्ति कहती हूँ, भाव-पक्ष की प्रबलता। वह एक शक्ति मनुष्य में होती है, जिस शक्ति का काम है कि आपको विवेक के प्रकाश में जैसा दिखाई दे रहा है उस पर आप चल पड़ें। तो दो बातें हुई न, एक से दिख रहा है कि यह सही रास्ता है और एक शक्ति आपको मदद दे रही है, कि इस पर चल पड़ो। तो जिन लोगों में यह विवेक का प्रकाश और हृदयशीलता के आधार पर, उस प्रकाश में चलने की शक्ति दोनों का विकास साथ-साथ होता रहता है, उनको देर नहीं लगती है। ग्रन्थ में से पढ़ लिया तो क्या? सन्तों के मुख से सुन लिया तो क्या? और किसी के प्रति-श्रद्धा-भक्ति है तो गुरु बना लिया और उसके मुख से सुन लिया तो क्या?

चाहे जैसे हो उसको अपने जन्म-जात प्राप्त विवेक के प्रकाश में जो सही बात जँच जाती है, उसके अनुसार चलने में उसको देर भी नहीं लगती, दिक्कत भी नहीं होती। और जिन साधकों में यह लिबिग्नल फोर्स जिसको कहते हैं जीवनी-शक्ति जिसको कहते हैं, यह हृदयशीलता भाव-पक्ष की प्रबलता जिसको कहते है यह अंश कम विकसित है, ऐसा न कह करके मैं ऐसा कहूँ, कि अधिक कुण्ठित हो गया है। उनको सुने हुए, समझे हुए

मार्ग पर चलने में देर लगती है। दिखाई देता है और चला नहीं जाता। ऐसा कभी आपने अनुभव किया है? जी। रोज होता है। क्या होता है? भला कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो योगवित हो करके उस अविनाशी से अविनाशी योग हो जाने के बाद का जो आनन्द है उस आनन्द को पसंद नहीं करेगा? कौन ऐसा मनुष्य होगा कि मरणशील शरीर के रहते-रहते उस अविनाशी जीवन से अभिन्न होकर, अखण्ड आनन्द में निवास करना पसंद नहीं करेगा। कौन ऐसा आदमी होगा, जो जीवन भर की नीरसता से जला हुआ, तड़पता हुआ अनन्त माधुर्यवान के आजस्र प्रेम-रस की धारा से अपने को आप्लावित करना पसंद नहीं करेगा? ऐसा तो नहीं लगता, कि कोई होगा। ऐसा ही लगता है कि अगर वह मनुष्य है तो योगवित होना, तत्त्ववित होना, भगवत्-भक्त होना अवश्य पसंद करता है। उसमें सब भाई-बहनों की गिनती है। है कि नहीं है? है। हम सब लोगों की गिनती है उसमें। अब इसके आगे आप सोच करके देखिए कि योग वित होने का, तत्त्ववित होने का, भगवत-भक्त होने का जो मौलिक उपाय है वह क्या है? बाहरी विधि-विधान और साम्प्रदायिक अनुष्ठान और मत विचार पंथ आदि के भेद को पार करके सार्वभौम सत्य जो सबके सामने स्वामी जी महाराज ने रखा, उस रूप में योगवित होने का, तत्त्ववित होने का भगवत्-भक्त होने का उपाय हम लोगों को मालूम है कि नहीं है? बोलिए? जी उपाय तो मालूम है सुना ही है और रोज सुन रहे हैं प्रतिदिन। और अपने महाराज जी की वाणी जो सुन रहे हैं, उसमें भी सुन रहे हैं और भी कहीं किसी सन्त महात्मा के पास जाइए तो वहाँ से भी सुन आते हैं, किसी भी सद्ग्रन्थ को उठाकर पढ़ना आरम्भ करिए तो उसमें भी वहीं लिखा है। तो उपाय तो अपने सब लोगों को मालूम है। अपनी आवश्यकता का भी ज्ञान है हमें। वह जीवन चाहिए जिसमें मृत्यु नहीं है, हमें वह रस चाहिए जो क्षति-पूर्ति से रहित है। हमें वह सुख चाहिए जिसमें दुःख मिश्रित नहीं

है। आवश्यकता तो अपनी है अपने सामने। और बिना किसी के सिखाए समझाए, बिना किसी के पढ़ाए-लिखाए इस आवश्यकता का ज्ञान सब मनुष्यों को होता है। तो आवश्यकता भी मालूम है और कैसे होगा यह उपाय भी मालूम है। जी! मालूम है।

स्वामी जी महाराज ने कहा, कि किसी को बुरा मत समझो, किसी के साथ बुराई मत करो, किसी का बुरा मत चाहो, ऐसा अगर करोगे तो तुम्हारा चित्त शुद्ध हो जाएगा। जहाँ तक हो सके सहयोग देते रहो, ऐसा करोगे तो चित्त शुद्ध हो जाएगा। की हुई भलाई के बदले में किसी प्रकार की आशा नहीं करोगे, सब कामनाएँ छोड़ दोगे, तो चित्त शांत हो जाएगा। और योग किसका नाम है भाई? मन और चित्त की शुद्धि और शान्ति का नाम योग है। तो आजतक अपने को योगवित होकर रहने आया ही नहीं। सहज समाधि की बात अनुभवी संतों ने हम लोगों को सुनाया है। तो वह सहज समाधि की बात तो छोड़ दो। वह तो अपने लिए बहुत दूर मालूम होती है। 24 घण्टे में से 1/2 घण्टा प्रातः काल और 15 मिनट संध्या समय मूक सत्संग का कार्यक्रम हम लोगों ने रखा है। और जब कभी मौका मिले जिस भाई-बहन को उस समय भी इसके बारे में सोचते रहते हैं कहते रहते हैं। तो क्या हो गया अपने को कि 1/2 घण्टे के लिए भी चिंतन से मुक्त होकर शांति में रहना कठिन होता है। यह सोचने की बात है कि नहीं है? जी, है। सोचने की बात है। क्या हो गया? चित्त का शुद्ध होना और शांत होना इतना जरूरी काम है और अशरीरी जीवन में प्रवेश करने के लिए अथवा अलौकिक अविनाशी तत्त्वों से अभिन्न होने के लिए यह पहला ही कदम है, कि चित्त शुद्ध और शांत हो। और चित्त की शुद्धि और शांति का उपाय भी अपने को मालूम है। और ऐसा नहीं है कि एक दिन याद रहता हो, दूसरे दिन भूल जाते हों, सो भी नहीं है। फिर भी क्या कारण है? ऐसा सोचना चाहिए।

एक संत के मुख से मैंने ऐसा सुना, बड़ा अच्छा लगा मुझे सुन करके उन्होंने मुझे बताया, कि उनके गुरु महाराज बड़े महापुरुष थे, सिद्ध पुरुष थे। तो वे मनुष्य के व्यक्तित्व की व्याख्या कर रहे थे और यह बता रहे थे, कि ऐसा-ऐसा करो, तो स्थूल शरीर से संग छूट जाता है। और ऐसे-ऐसे करो तो सूक्ष्म शरीर से संग छूट जाता है। और इस तरह से रहो तो कारण शरीर से सम्बन्ध टूट जाता है। और जब तीनों शरीरों से तादात्म्य टूट जाता है, तो व्यक्ति उस जीवन से अभिन्न हो जाता है, जिसमें मृत्यु नहीं है, अखण्ड आनन्द है। तो बताते-बताते उन्होंने ऐसे कहा कि पता नहीं क्या हुआ था कि गुरु महाराज जी कहते जा रहे हैं और जैसा-जैसा वे कहते जा रहे हैं वैसा-वैसा अपने साथ घटित होता जा रहा है। उन्होंने वर्णन किया ऐसे ऐसे ज्ञान के आधार पर शरीरों से तादात्म्य टूटता है तो जैसे-जैसे गुरु कहते गए वैसे-वैसे तादाम्य उनका टूटता गया। और व्याख्यान जब खत्म हो गया गुरु महाराज का, तो इनका शरीर से कोई सम्बन्ध था ही नहीं। शिष्य महाराज जो हैं वे अशरीरी जीवन के आनन्द में डूबे हुए हैं। तो शरीर कहाँ है, संसार कहाँ इसका पता कहाँ चलता है? पता ही नहीं। तीनों शरीरों से सम्बन्ध टूटा नहीं, कि सृष्टि लुप्त हो जाती है।

तो ऐसा कैसे हुआ उनका? मैंने तो जब सुनना आरम्भ किया तो इन बातों को सुनने में, सहन करने में, समझने में और उनको पकड़ने की चेष्टा में सिर से पाँव तक एक-एक स्नायु ऐसे-ऐसे स्पंदित होने लगते थे, स्वामी जी महाराज की सभा में। जैसे ही खत्म होता था व्याख्यान उनका। उठकर के भाग करके एकान्त में कहीं कोठरी में दरवाजा बन्द करके मैं बैठ जाती थी। और सुनने-समझने की चेष्टा को जाने दो। जब ग्रन्थों को लिखवा रहे थे महाराज, तो मैं बैठकर लिखती रहती थी, कई सहायक लोग सहायता करते रहते थे। गर्मी के दिन होते थे, गर्मियों की

छुट्टियों में आती थी। तो लिखवाते जा रहे हैं महाराज और जो वाक्य मैं लिखती जाती, उसके अर्थ को पकड़ने की चेष्टा में भी सारे शरीर का एक-एक तन्तु, एक-एक स्नायु एकदम से कम्पित होने लग जाता, उसमें झनझनाहट पैदा हो जाती। और लिख करके खत्म करते ही जहाँ के तहाँ छोड़ करके एकान्त में दरवाजा बन्द करके मैं छिप जाती, लेट जाती ऐसा होता। समझने की चेष्टा करने में इतना strain हो जाता था। और उस साधक की महिमा का तो वारा-पार नहीं है। जिन्होंने कहा कि गुरु महाराज बोलते जा रहे थे और जैसे-जैसे सुनते जाएँ वैसे-वैसे शरीर का तादात्म्य टूटता गया, टूटता गया और जब खत्म हो गया व्याख्यान, सब लोग उठ गए, आरती हो गई, जय जयकार हो गया पर इनको कुछ पता ही नहीं है। यह दृश्य का सम्बन्ध कब तक बना है? जब तक मुझे दृश्य से सम्बन्ध पसंद है। जब तक शरीरों का तादात्म्य टूटा नहीं तब तक यह सृष्टि दिखाई देती है। और स्थूल शरीर, कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर इनसे सम्बन्ध टूटा नहीं, कि सृष्टि लुप्त हुई। फिर तो वह है ही नहीं है। यह बात कल्पना नहीं है। यह बात हवाई नहीं है और जो लोग जीवन की गहराई में नहीं पहुँचते हैं, केवल इन्द्रिय दृष्टि और बुद्धि दृष्टि के व्यापार को ही जीवन का सत्य मानते हैं वे लोग तो घबरा जाते हैं।

कभी नाराज हो जाते हैं, कभी हँसी उड़ाते हैं। अरे यह तो आर्म चेयर डिस्कशन है, यह तो पास टाइम है ये अब दुनिया के किसी काम के लायक नहीं रहे तो ऐसी काल्पनिक बातों की चर्चा करते रहो, जिसका कोई ओर-छोर नहीं है, जिसका कोई अर्थ नहीं है, ऐसा कहने लग जाते हैं। पर बात यह बिल्कुल सत्य है। तो ऐसा कैसे हुआ? कि मेरे लिए तो सुनकर के और उसको grasp करने में इतना mental strain कि एक-एक स्नायु एकदम काँपने लगता था, हाथ पाँव झनझनाने लगते, हाथ पाँव ऐसा हो जाता तो हम तो चुपचाप एकान्त में जाकर के लेटना। वह इसलिए मैं

करती थी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार कि जो स्ट्रेन पड़ा है स्नायु पर, वह स्थिर हो जाए। इसलिए मैं किसी से बात नहीं करूँगी। दूसरा कोई काम नहीं करूँगी। वृत्ति को इधर-उधर नहीं होने दूँगी। जो कुछ मैंने सुना है, उसी में ध्यान रखूँगी। इसलिए अकेले में जाकर बैठ जाती ऐसा करती और उस साधक को यह सब कुछ करना ही नहीं पड़ा। वे सुनते जा रहे हैं सम्बन्ध टूटता जा रहा है। सारी मण्डली उठ गई, सब लोग अपने-अपने घर जाने लगे। वह शरीर जहाँ के तहाँ शिथिल शांत जैसे का तैसा बैठा हुआ है। तो बाद में ध्यान गया लोगों का तो कहना शुरु किया नाम ले करके, उठो सत्संग खत्म हो गया चलो, तो उनका सत्संग खत्म थोड़े हुआ था, उनका सच्चा सत्संग हो गया था। वे तो तीनों शरीरों से अतीत अविनाशी जीवन से मिल के उस आनन्द की मस्ती में थे। उनको क्या पता? जब शोर-गुल होने लगा, इधर-उधर बातचीत होने लगी तो गुरु महाराज ने लोगों को बुला करके मना किया। कि अरे भाई, तुम लो देहातीत जीवन की चर्चा सुनकर जा रहे हो, ये तो देहातीत जीवन में पहुँच गए। इसलिए अब इनको जाने के लिए मत कहो, नाम लेकर के पुकारो मत, उन्हें उस आनन्द में रहने दो। तो उनको जहाँ के तहाँ जैसे के तैसे बैठा हुआ छोड़ दिया गया। वे सब चले गए। बड़े आनन्द से बताया उन्होंने अपने ही मुख से बताया मुझे कितना समय वहाँ बीता, कई घण्टे बीते होंगे फिर गुरु महाराज ने स्वयं उनको सचेत किया। तो वे कहें नाम लेकर पुकारने पर कोई ध्वनि सुनाई दी? तो हमें लगे कि कौन पुकार रहा है किसको पुकार रहा है, पता ही नहीं चले। मैं पूछूँ बार-बार कौन? पुकारने वाला कौन और सुनने वाला कौन? कौन पुकार रहा है और किसको पुकार रहा है। इस भेद का ही पता न चले उनको। काफी समय लगा। तो अब अपने लिए क्या है? एक बात आप अपने से खोजिएगा। आज रात को जब सब कार्यक्रम पूरा हो जाए, आप अपने विश्राम की जगह

पर जब पहुँचे तो अकेले में बैठकर के अपने बारे में सोचिएगा। मैंने सोचा तो मुझे ऐसा लगा कि विचार के आधार पर योगवित होने का, तत्त्व वित होने का, भगवत् भक्त होने का उपाय जो है, वह तो हमारी समझ में बहुत सहज से आ जाता है, दिखता ही है न, कि कामना के फेर में पड़कर मैंने अपने को कितना अशांत किया और फिर अपनी अशांति से मैंने निकटवर्ती जन-समूह में खलबली पैदा की।

यह बात सूझती तो है ही है। और ऐसी-ऐसी कठिन विषम परिस्थितियों में मैंने अपनी ओर से अपने संकल्प का त्याग कर दिया, तो मेरे भीतर भी शांति हो गई, निकटवर्तियों में भी शांति बनी रही। यह दोनों तरह के अनुभव आपको हैं। मालूम हैं आपको। तो इसी तरह से अकेले में बैठ करके सोच करके देखिएगा, आपको स्वयं पता चलेगा। मुझे क्या पता चला सो मैं आपको बताऊँ। मुझे पता यह चला, कि अनुकूलता का सुख जितना ही अधिक अपने लिए मैं पसंद करूँ उतना ही अधिक जीवन-रस का स्रोत जो है, वह छिन्न होता जाता है। ये पता चला मुझे। उसी का यह परिणाम हो गया कि योगवित होने का, तत्त्ववित होने का भगवत् भक्त होने का उपाय भी मालूम है, आवश्यकता भी है, रास्ता भी साफ दिखाई देता है और वर्तमान क्षण उसके लिए सबसे उपयुक्त क्षण है। वह निकलता जा रहा है और दिखाई देता है कि अभी भी जीवन साध्य से अभिन्न नहीं हुआ। मुझे एक खास कारण यह मालूम हुआ।

मनुष्य के हृदय में जो रस-स्रोत है जिसके संचार से वह अपने आप को इतना भरपूर अनुभव करता है, कि बाहरी सहारे को छोड़ना उसे कुछ लगता ही नहीं है। सहज से छोड़ करके आगे निकल जाता है और हमें सहज नहीं मालूम होता, अपने पर थोड़ा pressure मालूम होता है। जहाँ त्याग का प्रश्न आया, वहाँ पर अपने को थोड़ा सा दबाव मालूम होता है विचार का। जैसा मैंने सोचा वैसा झटपट मैं कर डालूँ और सहज से कर

डालूँ और कर डालने के बाद फिर पीछे की ओर न देखूँ इतनी स्वभाविकता अपने जीवन में नहीं दिखाई देती है। जहाँ ऊँचाई पर उठने का प्रश्न आता है, वहाँ पर थोड़ा दबाव मालूम होता है, थोड़ा पीछे की तरफ खिंचाव मालूम होता है। तो जब अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण मैंने किया analysis मैंने किया, तो मुझे यह सूझा कि जहाँ-जहाँ जीवन में थोड़ी सी भी अनुकूलता है, उस अनुकूलता का सुख पसंद कर लो, तो सन्मार्ग पर चलाने वाला, चलाने में मदद देने वाला, जो लिबिग्नल फोर्स है, उसमें शिथिलता आ जाती है। जो जीवनी शक्ति है जो रस को स्रोत है वह क्षीण हो जाता है, पतला हो जाता है, दुर्बल हो जाता है, तो हम सुनते भी रहते हैं, कहते भी रहते हैं, समझते भी रहते हैं, और जहाँ त्याग की घड़ी आती है, वहाँ पीछे हट जाते हैं।

तो अकेले में बैठ करके अपने सम्बन्ध में इस विषय पर सोचना चाहिए। और लगे, कि मार्ग तो दिखाई दे रहा है और चलने में बहुत शिथिलता मालूम हो रही है। अगर ऐसा दिखाई दे किसी भाई-बहन को, तो अपने बारे में सोचना। और क्या सोचना? कि ऐसे ही घर में, परिवार में, समाज में, आश्रम में, निकटवर्ती जन समूह के बीच में कहीं भी मैं हूँ, वहाँ पर बहुत सम्भव है अनुकूलता-जनित सुख को पसंद करके उस तरह से हम चल रहे हैं। जिसने पराश्रय और परिश्रम-जनित सुख को पसंद किया उसके हृदय में से यह जीवन रस-स्रोत सूखता है, क्षीण होता है। और यही कारण है, कि रास्ता दिखाई दे रहा है और चलने में देर लग रही है। नहीं तो देर लगने की कोई बात नहीं है।

प्रवचन 20

उपस्थित महानुभाव, सत्संग-प्रेमी माताओ, बहनो और भाइयो !

मानव-जीवन का विश्लेषण करके हम देखें, तो इसमें दोनों तरह के तत्त्व पाए जाते हैं, एक भौतिक पहलू है जिसके आधार पर तीनों शरीरों की रचना होती है, एक अलौकिक तत्त्व है, जिस पर हमारा अपना मैं पन का मास आधारित है। तो भौतिक तत्त्व जो है स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर, इन तीनों को हमने इतनी प्रधानता दी कि इनके माध्यम से दृश्य जगत् से सम्पर्क स्थापित करना और उस सम्पर्क में कभी सुख भी मालूम होता है, कभी दुःख भी मालूम होता है, कभी अनुकूलता भी आती है कभी प्रतिकूलता भी आती है। तो शरीरों के माध्यम से संसार से सम्पर्क स्थापित करना और उसमें सुखद बातों से चिपक जाना और दुःखद बातों से भागने की चेष्टा करना, इस सीमा के भीतर रहने के लिए हम लोग नहीं बनाए गए हैं।

शरीरों में जीवन-बुद्धि स्वीकार कर लेना और उनके माध्यम से भौतिक जगत् के सम्पर्क से सुख लेने की चेष्टा करना और दुःख से बचने की चेष्टा करना, इतना तो पशु श्रेणी में भी होता ही है। आपने देखा होगा प्रकृति विज्ञान पढ़ते समय बहुत-सी बातें ऐसी मिली कि जैसे कोई लता पता है, कोई छोटे कीड़े-मकोड़े हैं तो प्रकृति उनको बाह्य वातावरण के खतरे से बचाने के लिए तरह-तरह की बनावट में ही सुरक्षा दे देती है। कोई लता-पता है, उसमें इतने कँटीले रोएँ होते हैं कि कोई कीड़ा उसको चाट नहीं सकता है। छोटे-छोटे कीड़े होते हैं, किसी-किसी के बदन पर ऐसे विशाल रोम होते हैं कि आप छू दीजिए तो कितनी खुजली हो जाए सूजन हो जाए। यह सब तो इस जगत् में शरीर धारी बनना और भौतिक तत्त्वों से पोषण और सुख लेना और दुःख देने वालों और हानि पहुँचाने वाले तत्त्वों से बचना, इतना तो पशु-जीवन में होता ही है। अगर इतने ही

में हमने अपने को सीमित किया, तो फिर मानव-जीवन सार्थक नहीं हुआ। हम लोगों के व्यक्तित्व में केवल जीवों के भरण-पोषण और सुरक्षा का ही प्रश्न नहीं है। आप देखेगें कि जीवों के भरण-पोषण और सुरक्षा का प्रबन्ध करते-करते भी और सब प्रकार से भरा-पूरा होते हुए भी मनुष्य के भीतर उसके आगे और आवश्यकताएँ होती है। तो जब उसे दुःख मिलता है, तो वह पसंद करता है कि इस दुःख में भाग लेने वाले साथी भी चाहिएँ। जी होता है न? कितने प्रकार के सामाजिक नियम इत्यादि बनाए गए हैं कि कोई व्यक्ति अगर किसी प्रकार के दुःख में पड़ गया तो उसके दुःख को बाँटने के लिए, उसमें सहायक होने के लिए, सहानुभूति प्रकट करने के लिए भी उसको समूह चाहिए। यह तो कोई शारीरिक आवश्यकता नहीं हुई न? स्थूल शरीर की आवश्यकता नहीं हुई, यह सूक्ष्म शरीर की आवश्यकता हुई।

अभी इस गर्मी में उत्तरकाशी के लोगों ने मानव सेवा संघ की शाखा बनाई, और मुझे बुलाया था। तो वे सज्जन मुझे लेकर के जा रहे थे स्वर्गाश्रम से उत्तरकाशी। रास्ते में मैंने देखा, कि एक लाश जा रही थी और उसके पीछे कितने ही लोग थे, पुरुष भी थे स्त्रियाँ भी थीं। सब के सिर पर लकड़ी की छोटी-छोटी गठरी थी। रस्सी से बाँधकर सिर पर रखके। हर आदमी जो उस लाश के पीछे जा रहा था वह लकड़ी की गठरी लेकर जा रहा था। तो जो लोग मुझे ले जा रहे थे, उन लोगों से मैंने पूछा कि यह क्या बात है? तो उन्होंने कहा कि पर्वतीय प्रान्तों में यह प्रथा है, कि किसी एक के घर में मृत्यु हो जाए तो उसको लकड़ी का इन्तजाम नहीं करना पड़ेगा। सहानुभूति में जितने लोग आते हैं सब कोई घी भी लाएगा, कोई चंदन भी लाएगा, कोई पुष्प भी लाएगा और लकड़ी तो सभी लाएँगे। तो जिसके घर में मृत्यु हुई उसको इस अन्तिम संस्कार के लिए अपनी तरफ से कुछ भी करना नहीं पड़ता है। बड़ा अच्छा लगा मुझे। मैंने कहा यह तो बहुत बढ़िया सामाजिक सहयोग है। समाज के

सब लोग, दूसरे ही लोग सब इंतजाम करके और लाश के साथ जाएँगे और अन्तेष्टि करके चले आएँगे।

तो आदमी को यह भी चाहिए कि अगर मैं दु:ख में हूँ, तो दु:ख में सहानुभूति देने के लिए भी, उसको बाँटने के लिए भी समूह चाहिए। अगर किसी प्रकार का हर्ष का अवसर है, तो उस हर्ष की वृद्धि के लिए भी आदमी को समूह चाहिए। ये सब आवश्यकताएँ भी मनुष्य की होती हैं। अच्छा तो यह भी हो गया। समाज इतना उदार है, प्रकृति में इतनी उदारता है, कि ये सब आवश्यकताएँ भी मनुष्य की पूरी हो गई। इतना ही नहीं उसके आगे भी इसकी आवश्यकता है। वह क्या है? अगर मेरे जीवन में हर्ष आया तो उस हर्ष का भी अन्त नहीं होना चाहिए, तो अनन्त आनन्द की खोज उसे लग जाती है। अगर कहीं पर मृत्यु दिखाई देती है कि शरीर नाशवान है, जो अणु-परमाणुओं के संगठन से बन गया है उसका विघटन होगा ही, प्रकृति का यह अटूट नियम है, तो आदमी इस सीमा को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। क्यों नहीं तैयार है? उसमें सामर्थ्य है कि मृत्यु पर विजय पा सके। वह नहीं मानता है। हम मृत्यु को नहीं मानेगे। हम मृत्यु के वश में नहीं होंगे। तो जो मनुष्य इस दिशा में अपनी आवश्यकता को जाग्रत रखता है, उसमें यह सामर्थ्य आ जाती है, कि मृत्युजंय होने के लिए जो पुरुषार्थ चाहिए, वह सब करने के लिए तैयार हो जाता है।

राजकुमार सिद्धार्थ ने यही किया था। एक मृतक शरीर को देखा तो उस महापुरुष के जीवन में सब जीवित शरीरों में मृत्यु का दर्शन हो गया। युवावस्था थी, सुख-वैभव से भरा हुआ महल था, सब प्रकार का सुख-आराम था लेकिन इन्द्रिय-जन्य सुख ने उसके विवेक को धूमिल नहीं किया। उसने सारथी से पूछा कि भई यह क्या है? देखा नहीं था कभी मृतक को। तो सारथी ने कहा कि राजकुमार यह मृतक है? तो क्या हम

भी मरेंगे ? तो उसने कहा, राजकुमार जो भी शरीर धारण करेगा सभी को मरना पड़ेगा। तो मृतक को देख करके उन्होंने मृत्यु पर विजय पाना पसंद कर लिया। रोगी को देखा, रुग्ण अवस्था की पीड़ा, वृद्धावस्था का दुःख और मृत्यु की सीमा उस वीर पुरुष ने स्वीकार नहीं किया। नहीं, नहीं मनुष्य इतना विवश होकर के पैदा नहीं हुआ है, कि उसको वृद्धावस्था का दुःख भोगना ही पड़ेगा, उसको रोगावस्था का दुःख भोगना ही पड़ेगा, उसको संयोग-वियोग की दासता में बँधना ही पड़ेगा। इतनी बेबसी में जीने के लिए मनुष्य नहीं पैदा हुआ। तो बड़ी तीव्र जिज्ञासा उस वीर पुरुष के दिल में जग गई और अमर जीवन की खोज के लिए, दुःख-रहित जीवन की खोज के लिए, उन्होंने सुख-वैभव से भरे हुए राज्य को ठुकरा दिया। नहीं नहीं, मुझे यह सब नहीं चाहिए। क्यों भाई क्यों नहीं चाहिए? वह कह उठा "त्रिविध दुःख निवृत्ति हेतु बाँधू अपना पुरुषार्थ सेतु, सर्वत्र उड़े कल्याण केतु तब हो मेरा सिद्धार्थ नाम हे क्षण भंगुर भव राम राम। हे क्षण भंगुर संसार आपको राम राम है।

यह किसका काम है? यह मनुष्य का काम है। तो स्वामी जी महाराज कहते है कि भाई, मोह की पीड़ा से पीड़ित होकर के, संयोग-वियोग की दासता में आबद्ध हो करके तो पशु-पक्षी भी सुख-दुःख भोगते हैं। आपने देखा होगा पशु-पक्षियों में मादा पक्षी को, जब उसका छोटा-सा बच्चा खूँटे में दाना चुगने के लायक हो जाता है तो मादा पक्षी बाहर से दाना चुग-चुग करके उसके मुख में डाल देता है। देखा है आपने, तो क्या उसको अन्येष्टि करवानी है उस बच्चे से, क्या श्राद्ध-कर्म करवाना है, कि परलोक जाने पर पिण्डदान लेना है उसको? नहीं। पक्षी का बच्चा तो माँ-बाप के लिए यह सब नहीं न करेगा। तो भी वह पक्षी ममता से प्रेरित होकर, प्रकृति के नियम से बँधा हुआ होकर अपने मुख का दाना बच्चे के मुख में डाल रहा है।

तो स्वामी जी महाराज कहते हैं कि अगर तुमने भी अपनी सीमा यहीं तक रखी कि कमाई करके लाएँगे और मोह से प्रेरित होकर, भविष्य की आशा रखकर बच्चे के मुँह में डालेंगे, तो तुमने भी अपना ममता के घेरे में पुरुषार्थ रखा, तो कैसे आशा करते हो कि हम मृत्यु पर विजय पा सकेंगे, शांति में निवास कर सकेंगे, योगवित हो सकेंगे तत्त्ववित हो सकेंगे कैसे आशा करते हो।

एक माँ का लड़का 25-28 वर्ष का हो गया। सज्जन लोग हैं, परिवार के सब लोग हैं, हम लोग जानते हैं। तो एक दिन कोई बात हो रही थी। लड़का माँ की बात मान नहीं रहा था। आनन्द था उनका नाम आनन्द भाई आनन्द भाई हम कहते हैं उनको तो माँ कहने लगी कि अरे आनन्द तू कैसी बात करता है। अरे मैंने ही तुझे पैदा किया है तो आनन्द भाई कहते हैं कि माँ तू कैसी बात करती है, तूने इतना-सा पैदा किया था मैंने अपने को enlarge किया। तो अगर स्वार्थ की बात को देखो, यह कथा, कहानी, कल्पना नहीं है, मैं सच्ची बात बता रही हूँ, तो अगर स्वार्थ की बात देखो, अगर भविष्य में संतान से मुझको मदद मिलेगी इस आशा से तुम उसका पालन-पोषण करो और इस आशा की पूर्ति न हो तो क्रोध करो, क्षोभ में जलो, दुःख में गलो, तो यह तो भई। मनुष्य का जीवन नहीं।

तो स्वामी जी महाराज कहते हैं कि ममता-जनित उदारता जैसे मादा पक्षी ने अपने मुख का दाना बच्चे के मुख में डाल दिया यह ममता-जनित उदारता है न। तो स्वामी जी महाराज ने बताया कि ममता-जनित उदारता पशु-पक्षियों में भी होती ही है। अगर तुमने भी अपने को इसी सीमा में रख लिया, तो मनुष्य होना सार्थक कैसे होगा भाई? नहीं हो सकता है। इसीलिए हृदय की उदारता को बढ़ाओ।

कल संध्या समय की बैठक में जो चर्चा थी कि एक मृतक को, जैसे अभी मैं कह रही थी, एक मृतक को देखकर के राजकुमार सिद्धार्थ

ने सब जीवित शरीरों में मृत्यु का दर्शन कर लिया। और उस मृत्यु पर विजय पाने के लिए, अमरत्व के लिए, जो पुरुषार्थ चाहिए था कर डाला। हो गया उनका। उसी तरह से हम सब भाई-बहनों ने भी अत्यन्त प्रिय कुटुम्बी जनों को आँखों से देखते ही देखते श्मशान की ओर भेजा है। फिर भी इस पाँचभौतिक तत्वों से बने हुए शरीर में से मोह न मिटे, तो यह मनुष्यता का आदर हुआ कि अनादर हुआ? जी, अनादर हुआ।

बिल्कुल साफ बात है और किसी किसी समय तो ऐसी धड़कन होती है, मेरी हृदय की गति तीव्र हो जाती है, ऐसी घटनाओं को जब मैं देखती हूँ कि कितना ऊँचा जीवन मनुष्य का हो सकता है और जरा सी भूल के लिए, जरा सी बात में illusion में पड़कर क्या दुर्दशा कर बैठता है, कि स्वयं भी दुखी रहता है और जिस समाज में उपस्थित रहे उसमें भी दुःख फैलाता रहता है। तो भई, हम सब भाई-बहनों के लिए आवश्यक क्या है, कि हृदयशीलता बढ़नी चाहिए। नहीं बढ़ेगी, तो आप असत्य को असत्य जानकर भी नहीं छोड़ सकेंगे, और सत्य को सत्य मानकर के भी स्वीकार नहीं कर सकेंगे। बड़े कठिन-कठिन समय में साधना के पथ में जहाँ-जहाँ मैंने अपने को आगे बढ़ाने का प्रयास किया है, वहाँ वहाँ जब पसंदगी को, आसक्ति को, वस्तु और व्यक्ति के विश्वास को रास्ते में बाधा डालते देखा है, बहुत स्पष्ट विभाजन मुझे दिखाई देता है कि बिल्कुल प्रभु का दिया हुआ विवेक का प्रकाश बिल्कुल साफ दिखाता है कि इस रास्ते से चलकर काम बनेगा। और जानते हैं, कि अासक्ति कभी निभेगी नहीं, ममता कभी साथ देगी नहीं, जिनको अपना मानते हैं अपना मानते भी रहते है और संयोग में वियोग हो ही जाता है। वस्तुओं की आसक्ति, शरीर की आसक्ति, हम सब लोग अपने में पालते हैं, तो उसी आसक्ति के परिणाम से जीवन में नीरसता बढ़ जाती है, कठोरता भर जाती है, असमर्थता आ जाती है। तो आसक्ति भी पकड़े रहो और असमर्थता को दूर करना चाहो,

कभी सम्भव होगा? नहीं होगा। ममता भी पकड़े रहो और समाधिष्ठ होना चाहो, समाधि का आनन्द लेना कभी सम्भव होगा? नहीं होगा। तो बड़ा भारी द्वन्द्व है मनुष्य के जीवन में। यह द्वन्द्व है, वह सत्य को भी पसंद करता है और असत् के संगजनित सुख को भी नहीं छोड़ना चाहता है। वह परमात्मा को भी पसंद करता है और हाड़-मांस के बने शरीर की भी पूजा करता रहता है।

एक दिन की बात है संध्या समय, दिल्ली में हम लोग थे तो एक प्राकृतिक चिकित्सक आ गए। और बातचीत होने लगी तो उन दिनों में मुझको skin disease था चमड़ी पर एक्जीमा होता था। तो प्राकृतिक चिकित्सक थे तो उनसे बातचीत होने लगी। तो बातचीत करते-करते मूक सत्संग का समय हो गया था और उसमें से 15 मिनट निकल गया बातचीत करने में। मुझको एक्जीमा के लिए प्राकृतिक चिकित्सक से बात करने में इतना interest आ गया, इतनी अभिरुचि पैदा हो गई कि ध्यान ही नहीं रहा कि मूक सत्संग का समय बीत रहा है। तो करीब 15 मिनट निकल गए। उसके बाद मेरे ध्यान में आया कि यह तो मूक सत्संग का समय है। तो फिर डॉक्टर को भी बिठा दिया मैंने, मैं भी बैठ गई, समय पूरा हो गया, सत्संग हो गया। जब सब बीत गया तो स्वामी जी महाराज मुझसे बात करने लगे । सन्तों के सिखाने के तो बहुत से ढंग है तो पूछने लगे मुझसे सब समाचार, उन्होंने क्या-क्या बताया, क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए। करते-करते अपने कंधे पर तौलिया झाड़ कर उठने लगे तो कहने लगे कि लाली, करती रहो शरीर की पूजा। कह करके चल दिए। तो मेरे ध्यान में आया कि क्या बात हो गई। तो सोचा मैंने तो ध्यान आ गया, ठीक बात है। मूक सत्संग-अर्थात् अविनाशी जीवन का संग, तो सब प्रकार के दुखों की निवृत्ति, परम शांति और जिससे चमड़े पर होने वाले रोग से भी छुट्टी, स्वस्थ शरीर से भी छुट्टी और अस्वस्थ शरीर से भी

छुट्टी, तीनों शरीरों से छुट्टी, तो शरीरों से परे देहातीत जीवन जो मेरा अपना है और जिन अलौकिक तत्त्वों से इस मैं-पन की रचना हुई है उन आलौकिक तत्त्वों के निवास करने का समय जो था वह किसमें बीत गया? नाशवान शरीर की सुरक्षा की चर्चा में। महाराज जी ने और कुछ नहीं कहा। सब बात मुझसे पूछ ली। सब जो बताना था बता दिया उसके बाद उठकर खड़े हुए अपना कपड़ा-वपड़ा सँभाल कर उठे और कह कर चले गए, कि लाली करती रहो शरीर की पूजा।

तो जो सदा-सदा के लिए रह सकता है वह Unimportant मालूम होता है। फुरसत मिलेगी, तो सत्संग में कभी जाएँगे, अब जरूरी काम से छुट्टी मिलेगी तो गैर जरूरी काम करेंगे। तो सत्य से अभिन्न होने का प्रोग्राम जो है वह तो गैर जरुरी है और असत्य को सँभाल-सँभाल करके मुट्ठी में बाँध करके रखे रहने की चेष्टा जो है, वह है निरर्थक। तुम्हारे मुट्ठी में बाँधने से भी वह रहेगा नहीं। लेकिन वह जरूरी मालूम होता है। तो इसको कैसे मिटाएँ? बीमारी का वर्णन करना मेरा उद्देश्य नहीं है। क्या करूँ वर्णन करके, यह थोड़ा ही संकेत बहुत है। क्योंकि हम सभी लोग भुक्त-भोगी है अंजान तो है नहीं। तो चर्चा किस बात की हो रही है कि इससे ऊपर कैसे उठे? तो ऊपर उठने के लिए बहुत-बहुत बड़े उपाय लोगों ने बताए। किसी ने कहा निरन्तर भगवान का भजन करते रहो, सब रोग छूट जाएगा, सब आसक्ति मिट जाएगी, सब दोष नाश हो जाएँगे। तो स्वामी जी महाराज कहते हैं भले आदमी, निरन्तर भगवान का भजन तुम तब न करो, जब तुममें क्षमता हो करने की। करने बैठते हो भगवान का भजन और होता रहता है संसार का चिंतन। कैसे कर लोगे?

विदेशी बालक यहाँ आया था न स्वामी जी महाराज के पास कि स्वामी जी महाराज Meditation सिखा देंगे। तो स्वामी जी ने कहा, नहीं सिखाऊँगा। महाराज, क्यों नहीं सिखाइएगा? वह तुमसे नहीं होगा इसलिए

नहीं सिखाऊँगा। बात तो सच्ची है। अनजान तो है ही नहीं है। हम सब लोग जानते ही हैं। क्यों नहीं होता है भई? कैसे होगा? इसी संदर्भ में कल संध्या काल की बैठक में जैसा मैंने निवेदन किया था उस विषय का, थोड़ा और विश्लेषण करके निवेदन कर रही हूँ कि भाई, हम सब भाई-बहनों को हृदयशीलता बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। कोई ऐसा व्यवहार करो मत, कि हृदय में कठोरता आवे, स्वार्थ की सीमा गाढ़ी हो जाए ऐसी कोई क्रिया मत करो, ऐसा कोई व्यवहार मत करो, ऐसा कोई भाव जीवन में मत रखो। अगर हृदय-पक्ष सबल नहीं हुआ तो रास्ता दिखाई देता ही रहेगा और जीवन जहाँ का तहाँ बँधा रहेगा। हृदय शीलता को बढ़ाने का उपाय क्या है? तो उपाय हर एक की अपनी-अपनी परिस्थिति, अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार बना लीजिए आप अपने से। मूल बात क्या है? तो मूल बात यह है कि ममता-जनित उदारता में संतुष्ट मत रहो। मैंने देखा है कि हमारे बहुत वृद्ध सत्संगी भाई-बहन बैठे हैं, ये जान रहे हैं कि सम्पत्ति मैं साथ नहीं ले जाऊँगा। हर समय आकर के मुझसे पूछते हैं और मेरी इनके प्रति बहुत सहानुभूति है, प्रियता है और हर बार सलाह देती हूँ कि भाई जी, सब कुछ छोड़-छाड़ कर चले आइए, सो सहन नहीं होता है। छोड़ना चाहते हैं लेकिन लड़के ले ले तो अच्छा है, भतीजे ले लेगें तो थोड़ा घाटा मालूम होता है। कैसे सत्य को पकड़ना चाहते हो भाई? सारी सृष्टि के छोटे से छोटे कीड़े-मकोड़े को भी जो खिलाता है, पिलाता है, भरण-पोषण करता है, सुरक्षा करता है उस सृष्टि में रहकर उस सृष्टिकर्त्ता के प्रेमी होना चाहते हो और अपने लड़के व भाई के लड़के में इतना भेद दिखाई देता है। कैसे हृदयशीलता का विकास होगा?

आपके दुःख से दुखी होकर मैं बोल रही हूँ, नाराज मत होना। एक की बात नहीं, अनेक की बात है, छोड़ने के लिए भी तैयार होते है तो मोह का नाता भी खोजते फिरते हैं, कि किसको दूँ? कई भाई ऐसे आए जिन्होंने

स्वयं विवाह नहीं किया, घर नहीं बसाया। इस मण्डली में और भी एक मेरा भाई बैठा है। बड़ी बहादुरी की, उसने घर-गृहस्थी नहीं बसाई। नहीं नहीं नहीं, मुझे सत्य चाहिए, मुझे सत्य चाहिए, मुझे परमात्मा चाहिए। बड़ी अच्छी बात है भैया। स्वामी जी महाराज को तो ऐसा कोई मिल जाए साधक, तो वह रत्न-पारखी कंकड़ पत्थर में फँसे हुए, मिले हुए में से छाँट-छाँट करके, तराश-तराश करके तैयार कर देने में जैसे जौहरी को मजा आता है, ऐसे स्वामी जी महाराज को आनन्द आता था। कोई साधक इतनी-सी आगे बढ़ने की अभिलाषा दिखाए, तो उस पर स्वामी जी महाराज अपने प्राण निछावर करते थे। तो उन्होंने गले लगाया खूब प्यार किया, खूब सँभाला। और अभी तक वही क्रम चल रहा है। थोड़ा भतीजों का काम रह गया थोड़ा भाइयों का काम रह गया, तो एक शरीर को मोह के बंधन से बचाने के लिए तुमने बाजार नहीं फैलाया तो दूसरे फैले हुए बाजार में अपने को फँसा दिया।

तो भई ममता-जनित उदारता पशु-पक्षियों में भी है। मनुष्य हो करके भी उसी सीमा में हम लोग अपने को बाँध करके रखना पसंद करते हैं, तो फिर असीम, अनन्त परमात्मा के प्रेमी होना अभी तो नहीं होगा। आगे उनकी मौज है, किसको कैसे करा देते हैं वह तो वे जाने सब दिन के लिए दरवाजा तो मैं नहीं बन्द कर सकती पर अभी नहीं होगा बहुत कठिनाई है। और मैं क्या बताऊँ? इतनी अच्छी धातुओं से मनुष्य की रचना उन्होंने की है, कि रास्ते चलते समय और बातचीत करते समय और काम करते समय और मैंने जब काम किया है, उस समय की बातें भी मुझको याद हैं और अब भी जो कर रही हूँ उसकी बातें भी मुझको याद हैं। तो पढ़ाने के लिए जब मैं प्रवेश करती, तो महाराज जी ने मुझे मंत्र दिया कि देखो जब तुम महाविद्यालय में जाओ, छात्राओं के सामने खड़ी हो जाओ तो उनको भीतर ही भीतर प्रणाम करो और यह याद रखो, कि तुम्हारे भीतर

पढ़ाने का राग था, दूसरों को समझाने का राग था, तो तुम्हारे ही प्रेमास्पद ने सृष्टि का रूप बनाया, छात्राओं, का रूप बनाया और वे सुनने को बैठे हैं तो यह सब गँवार हैं, मूर्ख हैं, नहीं जानती हैं और मैं विशेष जानती हूँ ऐसा अभिमान लेकर काम मत करना। यह पढ़ाया उन्होंने। तो भला ये बातें हर समय याद रहती, तो कब का काम हो गया होता।

लेकिन मुझे याद है कि समय-समय पर जब कभी प्रवृत्ति में लगे हुए, उसी घड़ी में यह सत्य याद आ गया, तो काम और काम करने का साधन और काम करने का क्षेत्र संसार सब एकदम एक सेकण्ड में लुप्त हो जाता। कुछ नहीं रहता। इतनी जल्दी परिवर्तन होता है, इतनी जल्दी से यह Change मनुष्य के भीतर आता है, कि जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता, जिसका कोई वर्णन भी नहीं कर सकता। और सन्तों की जो वाणी है, कि सत्य से अभिन्न होने के लिए काल अपेक्षित नहीं है यह वाणी सर्वांश में सत्य है। काल अपेक्षित नहीं है। तो रचना तो हम लोगों की इतनी अच्छी है, कि अभी-अभी असत्य को अस्वीकार करो तो अभी-अभी सत्य के होने का स्पर्श भी प्राप्त हो जाता है, आनन्द भी आ जाए, प्रकाश भी हो जाए और भ्रम का निवारण भी सदा के लिए हो जाए। ऐसा नहीं होता, कि एक बार आप देहातीत जीवन के आनन्द को पा चुके तो फिर आप भूल जाएँगे कि आपको भ्रम हो जाएगा सो कभी नहीं होगा भ्रम नहीं होगा।

पुराना राग रह गया है उसकी निवृत्ति नहीं हुई है, तो कुछ काल और प्रवृत्ति की परिस्थिति प्रकृति देती है। जैसे सत्संग के प्रकाश में तत्काल आपने असत्य को अस्वीकार कर दिया, कि सत्य को स्वीकार कर लिया। तो सत्य की स्वीकृति मात्र से सत्य की विभूतियाँ आपके व्यक्तित्व में प्रकट हो जाती हैं। भीतर तो हैं ही, प्रकट होने की देर है। तो प्रकट हो गई, तो उनके प्रकट होने का प्रभाव क्या होता है ? कि साधन काल में ही साधक

शरीर-धर्म से ऊपर उठ जाता है। तो सत्य की विभूतियाँ क्या है? सत्य की विभूतियों की गिनती तो हम गिना नहीं सकते हैं, लेकिन जो मुख्य बात है, सामर्थ्य का प्राकट्य होगा, आनन्द का प्राकट्य होगा, रस का प्राकट्य होगा, अपने आप को जीवन इतना भरा-पूरा ऐसा रसमय लगेगा कि शरीर है, संसार है कि काम है कुछ पता नहीं चलेगा।

तो शरीर-धर्म से आप तत्काल छूट जाते हैं ऐसा होता है। फिर क्यों प्रवृत्ति में आ गए? तो उसके बाद आपके जीवन में कोई नया राग पैदा नहीं होगा, लेकिन पुराने राग जो तुम्हारे रह गए हैं, उन रागों के लिए प्रकृति पुनः मुझको प्रवृत्ति का अवसर देती है और उस प्रवृत्ति में फिर मैं नया सुख लेने लग जाऊँ, तो इससे बढ़कर मनुष्य का दुर्भाग्य और कुछ नहीं हो सकता। तो प्रवृत्तियाँ तो कुछ काल और चलती है लेकिन आदमी भ्रम में नहीं पड़ता, अंधकार में नहीं पड़ता, ऐसा होता है। अनेक साधकों के साथ ऐसा हुआ है। प्रकृत्ति में बड़ी उदारता है, प्रकृति-पति परमात्मा में बड़ी उदारता है। वे तो इतना प्यार करते हैं हम सब लोगों को, इतना उपाय करते हैं कि कौन-सा उपाय नहीं रच डालते हैं। कि किसी तरह से मेरा बच्चा संसार के भ्रम में पड़ करके दुःख न पाता रहे। तो ज्ञान के प्रकाश से भ्रम का निवारण हो जाए, हृदय के रस के विकास से जन्म जन्मातर का ताप शांत हो जाए, इसके लिए उनकी ओर से हर चेष्टा रहती है।

अब अपने लोगों का हिस्सा कितना-सा बाकी है? केवल इतना-सा बाकी है, कि जिस दिन से अपने भीतर चेतना जग जाए, कि मैं मनुष्य हूँ फिर मनुष्यता के स्तर से नीचे मत उतरना। न किसी लोभ से, न किसी भय से, न किसी लाभ के लालच से। लाभ से, लोभ से, भय से किसी भी लालच से मनुष्यता के Standard से नीचे मत उतरना। ऊपर उठाने का काम तो वे खुद करते हैं। शरीर के सम्बन्ध से सबसे बड़े भाई यहाँ आ चुके हैं वृन्दावन आश्रम में। बड़े सरस, बड़े साहित्यकार, सज्जन पुरुष

थे, तो उनके मुख से मैंने बहुत बार सुना। कोई बात होगी साधन की चर्चा चलेगी, साधक के पुरुषार्थ की बात चलेगी तो अपनी भोजपुरी भाषा में कहेंगे अरे बहनी, भगवान की बाहें बड़ी लम्बी है बड़ी लम्बी है, तू डरती काहे को है। जितनी दूरी तुम अनुभव करते हो उससे अधिक लम्बी बाहें बढा करके वे उठा सकते हैं, डरती काहे को है।

डरने की कोई बात ही नहीं। सकुचाने की कोई बात ही नहीं है। तो इतना अच्छा अवसर यह वर्तमान है जिस वर्तमान में बैठकर हम सब लोग बातें कर रहे हैं और जीवन के सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं। यह वर्तमान ही सबसे अधिक शुभ घड़ी है और बढ़िया से बढ़िया अवसर है, इस जीवन को सार्थक करने का। तो भूतकाल में मैंने क्या किया है, भूल जाओ। सब क्षमा कर दिया जाएगा। बहुत उदार विधान है। और भविष्य की कल्पनाएँ भी छोड़ दो, कल्पना की भी आवश्यकता नहीं है। बस वर्तमान में मुझे क्या करना है दो बातों के लिए—जाने हुए असत् के संग का त्याग और जीवन के सत्य की स्वीकृति। अब किस रूप में कर सकते हैं, कहाँ तक कर सकते हैं, कैसे कर सकते हैं, बस इसे सोचना है अपने लोगों को और इसे करना है। और ईश्वर का इतना सुन्दर और इतना प्रेमपूर्ण attitute है हम लोगों के प्रति। अपनी तरफ से इतना बढिया एक व्यवहार वे रखते हैं मनुष्य के साथ।

स्वामी जी महाराज की वाणी में आप लोगों ने सुन रखा है, टेप में भरा हुआ है। वे कहते हैं, कि परमात्मा ने ठेका लिया हुआ है। है न? जब मुझे अंग्रेजी साहित्य में पढ़ाया जाता था? थॉमस हार्डी के उपन्यास हमारे जमाने में पढ़ाए जाते थे, तो वह नाराज होकर लिखता है एक जगह पर God has gone to sleep. Never to be awaken कहाँ है परमात्मा? वह चला गया है और सो गया है और कभी नहीं जगेगा, उसने छोड़ दिया है दुनिया में दु:ख-सुख भोगने के लिए। तो मैं खूब समर्थन

करती, बहुत नाराज रहती कि तुमको क्या गरज पड़ी है। तुम जाकर के क्षीर-सागर में आराम से सोओ। काहे को सृष्टि रच देते हो। हम रो रहे हैं, हम चिल्ला रहे हैं, बिलख रहे हैं, यह हो रहा है, वह हो रहा है, आपको कुछ मालूम ही नहीं होता है। तो सृष्टि-कर्ता परमात्मा को मैं सलाह देती थी कि सब समेट लो, अपने गर्भ में डाल लो और क्षीर-सागर में जाकर सो जाओ। तो मेरी सलाह की तो उनको जरूरत थी नहीं, सुनते ही नहीं थे।

सन्त के पास जब मैं पहुँची तो सन्त ने परमात्मा को ऐसा गैर जिम्मेदार नहीं बताया। जब कभी मैंने अपनी ओर से उनकी कठोरता की चर्चा की, तो स्वामी जी महाराज के भीतर कितनी पीड़ा होती थी, कि मैं क्या बताऊँ? एकदम मुट्ठी बाँधकर के कलेजा थाम लेते थे। कहते थे कि मेरी जगह पर अगर कोई भगवत्-भक्त होता तो इस वचन को सुन करके उसका Heart fail हो जाता। जब कभी मैं परमात्मा की कठोरता के बारे में कहती, तो मुझको ऐसा सुनाते, एकदम मुट्ठी बाँध करके कलेजा थाम लेते। ऐसे मत कहो, ऐसे मत कहो तुम, तुम्हारा ऐसा कहना उनके बारे में, मैं नहीं सह सकता। क्यों महाराज क्या बात है? तो बात क्या है उन्होंने ठेका लिया है। किस बात का? जो मुझे पसंद करेगा उससे मैं मिलूँगा। तो मैंने सब मुकदमे उन पर से उठा लिए। हमने कहा ठीक है, अब सही बात है। अब बनाओं खूब सृष्टि और प्रेम लुटाओ और मुझे भी सँभालो, मैं भी आनन्दित होऊँ तुम भी आनन्दित रहो। तब से मैंने सृष्टिकर्त्ता की शिकायत करना छोड़ दिया। अब नहीं करती।

इतना कोमल, इतना मधुर, इतना प्रेमी वह। बार-बार मैं उनके सामने व्रत लेती हूँ और बार-बार बेईमानी करती हूँ। बार-बार कहती हूँ हे प्रभु सब तेरा और फिर रह-रह कर किसी न किसी रूप में व्यक्तित्व का अभिमान पालती हूँ। और बार-बार वह क्षमा करने के लिए तैयार है।

बार-बार क्षमा कर रहे हैं। बार-बार भूल करते जाओ फिर जाके कहो, हे परमात्मा, भूल हो गई क्षमा करो, अच्छा कोई बात नहीं जाओ, सब क्षमा किया। तो सृष्टि-कर्त्ता ने हम सब लोगों को बनाया है, इस संसार में आ करके सक्रिय सहयोग के द्वारा समाज को सुन्दर बनाने के लिए, अचाह होकर अपने को स्वाधीन करने के लिए और प्रेमी होकर उस परमात्मा को प्यार करने के लिए। तो उनका जो मंगलमय उद्देश्य है मेरी रचना के सम्बन्ध में, इस उद्देश्य की पूर्ति में वे सर्व समर्थ स्वामी सब प्रकार से मदद करते हैं और करेंगे। इस आशा को आप अपने जीवन में गाँठ बाँध लीजिए। बेड़ा पार हो जाएगा, अवश्य हो जाएगा।

●

मानवता के मूल सिद्धान्त

1. आत्म-निरीक्षण, अर्थात् प्राप्त विवेके के प्रकाश में अपने दोषों को देखना।
2. की हुई भूल को पुनः न-दोहराने का व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना।
3. विचार का प्रयोग अपने पर और विश्वास का दूसरों पर, अर्थात् न्याय अपने पर और प्रेम तथा क्षमा अन्य पर।
4. जितेन्द्रियता, सेवा, भगवत् चिन्तन और सत्य की खोज द्वारा अपना निर्माण।
5. दूसरों के कर्त्तव्य को अपना अधिकार, दूसरों की उदारता को अपना गुण और दूसरों की निर्बलता को अपना बल, न मानना।
6. पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावना के अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव अर्थात् कर्म की भिन्नता होने पर भी स्नेह एकता।
7. निकटवर्ती जन-समाज की यथाशक्ति, क्रियात्मक रूप से सेवा करना।
8. शारीरिक हित की दृष्टि से आहार, विहार में संयम तथा दैनिक कार्यों में स्वावलम्बन।
9. शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवी, हृदय अनुरागी तथा अहं को अभिमान शून्य करके अपने को सुन्दर बनाना।
10. सिक्के से वस्तु, वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से विवेक तथा विवेक से सत्य को अधिक महत्त्व देना।
11. व्यर्थ-चिन्तन त्याग तथा वर्तमान के सदुपयोग द्वारा भविष्य को उज्जवल बनाना।

उपलब्ध साहित्य

1.	सन्त समागम भाग–1	15/-
2.	सन्त समागम भाग–2	7/-
3.	सन्त समागम भाग–3	7/-
4.	सन्त वाणी भाग–1 (सफलता की कुंजी)	10/-
5.	सन्त वाणी भाग–2	17/-
6.	सन्त वाणी भाग–3	8/-
7.	सन्त वाणी भाग–4	11/-
8.	सन्त वाणी भाग–5 (क)	6/-
9.	सन्त वाणी भाग–5 (ख)	6/-
10.	सन्त वाणी भाग–6	15/-
11.	सन्त वाणी भाग–7	15/-
12.	प्रश्नोत्तरी (संतवाणी)	10/-
13.	संत सौरभ (संतवाणी)	16/-
14.	संत उद्‌बोधन	18/-
15.	प्रेरणा पथ	18/-
16.	संत पत्रावली भाग–1	12/-
17.	संत पत्रावली भाग–2	15/-
18.	संत पत्रावली भाग–3	10/-
19.	जीवन दर्शन भाग–1	8/-
20.	जीवन दर्शन भाग–2	8/-
21.	चित्त शुद्धि भाग–1	15/-
22.	चित्त शुद्धि भाग–2	18/-
23.	जीवन पथ	9/-
24.	मानव की मांग	12/-
25.	मानव दर्शन	16/-
26.	मूक सत्संग और नित्य योग	17/-
27.	मानवता के मूल सिद्धान्त	9/-

28.	सत्संग और साधन	4/-
29.	साधन तत्त्व	7/-
30.	साधन त्रिवेणी	15/-
31.	दर्शन और नीति	9/-
32.	दुःख का प्रभाव	10/-
33.	मंगलमय विधान	8/-
34.	जीवन विवेचन भाग–1 (क)	15/-
35.	जीवन विवेचन भाग–1 (ख)	15/-
36.	जीवन विवेचन भाग–2	20/-
37.	जीवन विवेचन भाग–3	20/-
38.	जीवन विवेचन भाग–4	20/-
39.	जीवन विवेचन भाग–5	20/-
40.	A Saint's call to Mankind	30/-
41.	Sadhna Spot Light by a Saint	25/-
43.	संत जीवन दर्पण	10/-
44.	मानव सेवा संघ का परिचय	10/-
45.	साधन निधि	6/-
46.	पाथेय भाग–1	8/-
47.	पाथेय भाग–2	7/-
48.	पथ प्रदीप	5/-
49.	प्रार्थना तथा पद	2/-
50.	मैं की खोज	4/-
51.	जीवन विवेचन भाग 6 (क)	20/-
52.	जीवन विवेचन भाग 6 (ख)	20/-
53.	जीवन विवेचन भाग 7 (क)	15/-
54.	जीवन विवेचन भाग 7 (ख)	20/-

मिलने का पता : मानव सेवा संघ वृन्दावन – 281121 (मथुरा)
फोन : (0565) 2442778

सन्त हृदय की करुण पुकार

हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे हृदयेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे प्राणेश्वर, हे परमेश्वर ।
हे समर्थ हे करुणासागर विनती यह स्वीकार करो ,
हे समर्थ हे करुणासागर विनती यह स्वीकार करो ,
भूल दिखाकर उसे मिटाकर अपना प्रेम प्रदान करो ।
भूल दिखाकर उसे मिटाकर अपना प्रेम प्रदान करो ।
पीर हरो हरि पीर हरो हरि पीर हरो प्रभु पीर हरो ।
पीर हरो हरि पीर हरो हरि पीर हरो प्रभु पीर हरो ।